उजाला



बलवन्त सिंह

उजाला



बलवन्त सिंह

लेखक की अन्य कृतियाँ

उपन्यास

रात, चोर और चाँद
एक मामूली लड़की
काले कोस (प्रेस में)
तीसरा आदमी (,,)

कहानियाँ

पंजाब की कहानियाँ

उर्दू में

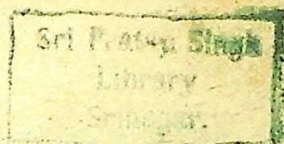
जग्गा (कहानियाँ और ड्रामे)
तारोपू (नावलेट व कहानियाँ)
सुनहरा देश (कहानियाँ)
हिन्दुस्तान हमारा (,,)
शीराजा (,,)
उजले फूल (,,)
खुदा की वसीयत (नावलेट संग्रह)

Ujala

उजाला

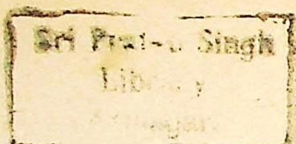
[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक
बलवन्तसिंह
Balwant Singh



प्रकाशन
२, मिन्टोरोड — इलाहाबाद — २

Mahal Parkas Allahabad



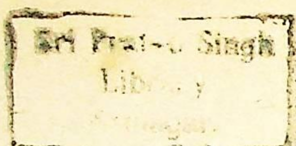
मूल्य २॥)
[प्रथम संस्करण]

प्रकाशक
ओंकार शरद
लहर प्रकाशन
२ मिंटो रोड, इलाहाबाद—२

मुद्रक
इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०
इलाहाबाद—३

प्रमुख वितरक
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली : बम्बई : नई दिल्ली

बेबी के नाम



मूल्य २॥)

[प्रथम संस्करण]

प्रकाशक

ओंकार शरद

लहर प्रकाशन

२ मिंटो रोड, इलाहाबाद-२

मुद्रक

इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०

इलाहाबाद—३

प्रमुख वितरक

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली : बम्बई : नई दिल्ली

बेबी के नाम

उजाला

एक

दर्द चाहा था हमने छिपाना
खुल गया फिर भी दिल का फ़साना

लेडी विलिंगडन गर्ल्स होस्टल के एक कमरे में बैठी हुई कुछ लड़कियों में से एक, जिसका नाम उमा था, अपनी जगह से उठी और गिलास हाथ में लेकर ठंडे पानी की सुराही तक पहुँची तो लड़कियों ने आँखों के इशारों से एक दूसरे को कुछ समझाया और चुपचाप हँसने लगीं।

उमा को सखियों के मौन संकेत का कुछ भी पता नहीं था। उसे अपनी धुन में यह खयाल तक नहीं आया कि कमरे पर एकाएक सन्नाटा क्यों छा गया था। सुराही की गर्दन झुकी थी और उसके गले में से बहने वाले पानी की आवाज़ और भी स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ रही थी। लेकिन उमा का ध्यान न अपनी सहेलियों की ओर था न सुराही की ओर। वह यूनिवर्सिटी के फाटक को एकटक देख रही थी ...... आज चौथा दिन था जब से सुरेश की शक्ल नहीं दिखाई दी थी।

क्या वह सुरेश से प्रेम करती थी ?

इस विचार से वह काँप गई। नहीं, नहीं—वह प्रेम नहीं करती थी।

फिर यह सब क्या था ?

क्या था ?··· ····वह क्या जाने !

कई महीने पहले की बात है कि फ्रान्सीसी साहित्य की एक कक्षा में उसने निगाह उठाई तो उसकी आँखें सीधी सुरेश की आँखों से जा मिलीं। सुरेश कोई नया छात्र नहीं था। वह दो साल से इस घन्टे में आमने सामने बैठे फ्रेञ्च पढ़ते चले आ रहे थे। उन्होंने सरसरी निगाह से एक दूसरे की ओर अनेक बार देखा भी था किन्तु उस दिन बिना किसी प्रेरणा के जो दोनों की आँखें मिलीं तो घुल मिल कर रह गईं। कुछ क्षणों तक वे एक दूसरे की ओर देखने पर इस तरह विवश हो गये मानो उनकी पलकें आपस में उलझ गई हों। फिर एक दम उमा का हृदय ज़ोर से धड़का और जैसे उसकी निगाहें आकश से पृथ्वी पर आ गिरी हों। इस प्रकार अनायास निगाहों के मिलने, मिलकर मिले रहने के बाद सहसा इस तरह तड़प कर अलग हो जाने के कष्ट प्रद अनुभव से पहले उसका चेहरा कानों तक लाल हो गया और फिर पीला पड़ गया····लेकिन हर रङ्ग में एक नवीन आकर्षण था।

इसके बाद कई दिनों तक सुरेश की ओर देखने का उसका साहस नहीं हुआ। वह नहीं जानती थी कि सुरेश भी उसकी ओर देखता था या नहीं। नज़रों के आपस में मिलने से जो भावना उसके मन में उत्पन्न हुई थी वह प्रभाव की दृष्टि से तीव्र अवश्य थी किंतु अस्पष्ट—भय और एक पाप का अनुभव लिये हुए। और उसमें जैसे प्रकाश की एक किरण !

उनके बीच उपर्युक्त दृष्टि-मिलन के अतिरिक्त कभी कोई घटना नहीं घटी, यहाँ तक कि कभी दोनों में एक बात तक नहीं हुई। यद्यपि यूनिवर्सिटी के कई लड़के आते जाते इशारे बाज़ी करते। कुछ दुष्ट मनचले आवाज़ें भी कसते, लेकिन उसने सुरेश की आवाज़ कभी नहीं सुनी। यहाँ तक कि कभी रास्ते में भी जाने अनजाने मुठभेड़ नहीं हुई·· कभी कभी उमा को इस पर आश्चर्य होता। किंतु क्लास-रूम में वह

अवश्य आता था। फिर जब कभी उमा ने बहुत साहस से काम लेकर आँख उठाई भी तो सुरेश को हमेशा अपनी ओर से बेपरवाह पाया। कभी कभी ही ऐसा हुआ कि दृष्टि उठाने पर उमा को ऐसा अनुभव होता मानो प्रेम की एक निगाह अभी अभी उसकी काली काकुलों को चूमती हुई इधर से गुज़री है।

इस प्रकार एक अपरिचित से इतनी अनभिज्ञ किंतु उसकी उपस्थिति के अनुभव से इतनी भिज्ञ रहते हुए दिन बीतते गये। शायद उमा को यह ख़याल था कि जीवन पर्यन्त इसी प्रकार दिन बीतते जायँगे। लेकिन चार दिन पहले एकाएक क्लास-रूम सूना सूना सा दिखाई पड़ने लगा, और आज भी.......

अपनी तल्लीनता में उमा को यह भी ध्यान न रहा कि गिलास कभी का भर चुका है। इधर पानी की धार पटाख़ की आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिरी उधर उसकी सहेलियाँ ज़ोर से ठहाका लगा कर हँसीं, तब उमा को होश आया। वह झेंपकर पीछे हटी और तिपाई से टेक लगाकर पानी पीने लगी..........लेकिन उसे इस बात का अनुभव नहीं हुआ कि उसकी सहेलियाँ उसके मन की दशा से भी परिचित हैं।

लड़कियों में से एक चंचल बोली—"अरी, मालूम भी है.....।"

सबने शोखी से कान आगे बढ़ाये।

"अरी क्या ?"

"वह चला गया।"

शशि, जो सबसे अधिक चंचल थी, नाक पर उंगली रख कर भवों से उमा की ओर संकेत कर बोली—"चले गये कहो न।"

"हाँ, भूल हो गई। चले गये, चले गये।"

"पर कहाँ गये ?"

"न जाने।"

"न जाने ?"

क्या था ?······वह क्या जाने !

कई महीने पहले की बात है कि फ्रान्सीसी साहित्य की एक कक्षा में उसने निगाह उठाई तो उसकी आँखें सीधी सुरेश की आँखों से जा मिलीं। सुरेश कोई नया छात्र नहीं था। वह दो साल से इस घन्टे में आमने सामने बैठे फ्रेञ्च पढ़ते चले आ रहे थे। उन्होंने सरसरी निगाह से एक दूसरे की ओर अनेक बार देखा भी था किन्तु उस दिन बिना किसी प्रेरणा के जो दोनों की आँखें मिलीं तो घुल मिल कर रह गईं। कुछ क्षणों तक वे एक दूसरे की ओर देखने पर इस तरह विवश हो गये मानो उनकी पलकें आपस में उलझ गई हों। फिर एक दम उमा का हृदय ज़ोर से धड़का और जैसे उसकी निगाहें आकाश से पृथ्वी पर आ गिरी हों। इस प्रकार अनायास निगाहों के मिलने, मिलकर मिले रहने के बाद सहसा इस तरह तड़प कर अलग हो जाने के कष्ट प्रद अनुभव से पहले उसका चेहरा कानों तक लाल हो गया और फिर पीला पड़ गया····लेकिन हर रङ्ग में एक नवीन आकर्षण था।

इसके बाद कई दिनों तक सुरेश की ओर देखने का उसका साहस नहीं हुआ। वह नहीं जानती थी कि सुरेश भी उसकी ओर देखता था या नहीं। नज़रों के आपस में मिलने से जो भावना उसके मन में उत्पन्न हुई थी वह प्रभाव की दृष्टि से तीव्र अवश्य थी किंतु अस्पष्ट—भय और एक पाप का अनुभव लिये हुए। और उसमें जैसे प्रकाश की एक किरण !

उनके बीच उपर्युक्त दृष्टि-मिलन के अतिरिक्त कभी कोई घटना नहीं घटी, यहाँ तक कि कभी दोनों में एक बात तक नहीं हुई। यद्यपि यूनिवर्सिटी के कई लड़के आते जाते इशारे बाज़ी करते। कुछ दुष्ट मनचले आवाज़ें भी कसते, लेकिन उसने सुरेश की आवाज़ कभी नहीं सुनी। यहाँ तक कि कभी रास्ते में भी जाने अनजाने मुठभेड़ नहीं हुई·· कभी कभी उमा को इस पर आश्चर्य होता। किंतु क्लास-रूम में वह

अवश्य आता था। फिर जब कभी उमा ने बहुत साहस से काम लेकर आँख उठाई भी तो सुरेश को हमेशा अपनी ओर से बेपरवाह पाया। कभी कभी ही ऐसा हुआ कि दृष्टि उठाने पर उमा को ऐसा अनुभव होता मानो प्रेम की एक निगाह अभी अभी उसकी काली काकुलों को चूमती हुई इधर से गुज़री है।

इस प्रकार एक अपरिचित से इतनी अनभिज्ञ किंतु उसकी उपस्थिति के अनुभव से इतनी भिज्ञ रहते हुए दिन बीतते गये। शायद उमा को यह खयाल था कि जीवन पर्यन्त इसी प्रकार दिन बीतते जायँगे। लेकिन चार दिन पहले एकाएक क्लास-रूम सूना सूना सा दिखाई पड़ने लगा, और आज भी''''''

अपनी तल्लीनता में उमा को यह भी ध्यान न रहा कि गिलास कभी का भर चुका है। इधर पानी की धार पटाख़ की आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिरी उधर उसकी सहेलियाँ ज़ोर से ठहाका लगा कर हँसीं, तब उमा को होश आया। वह झेंपकर पीछे हटी और तिपाई से टेक लगाकर पानी पीने लगी ''''''''''लेकिन उसे इस बात का अनुभव नहीं हुआ कि उसकी सहेलियाँ उसके मन की दशा से भी परिचित हैं।

लड़कियों में से एक चंचल बोली—"अरी, मालूम भी है''''''।"

सबने शोखी से कान आगे बढ़ाये।

"अरी क्या ?"

"वह चला गया।"

शशि, जो सबसे अधिक चंचल थी, नाक पर उंगली रख कर भवों से उमा की ओर संकेत कर बोली—"चले गये कहो न।"

"हाँ, भूल हो गई। चले गये, चले गये।"

"पर कहाँ गये ?"

"न जाने।"

"न जाने ?"

क्या था ?··· ····वह क्या जाने !

कई महीने पहले की बात है कि फ्रान्सीसी साहित्य की एक कक्षा में उसने निगाह उठाई तो उसकी आँखें सीधी सुरेश की आँखों से जा मिलीं। सुरेश कोई नया छात्र नहीं था। वह दो साल से इस घन्टे में आमने सामने बैठे फ्रेञ्च पढ़ते चले आ रहे थे। उन्होंने सरसरी निगाह से एक दूसरे की ओर अनेक बार देखा भी था किन्तु उस दिन बिना किसी प्रेरणा के जो दोनों की आँखें मिलीं तो घुल मिल कर रह गईं। कुछ क्षणों तक वे एक दूसरे की ओर देखने पर इस तरह विवश हो गये मानो उनकी पलकें आपस में उलझ गई हों। फिर एक दम उमा का हृदय ज़ोर से धड़का और जैसे उसकी निगाहें आकाश से पृथ्वी पर आ गिरी हों। इस प्रकार अनायास निगाहों के मिलने, मिलकर मिले रहने के बाद सहसा इस तरह तड़प कर अलग हो जाने के कष्ट प्रद अनुभव से पहले उसका चेहरा कानों तक लाल हो गया और फिर पीला पड़ गया·····लेकिन हर रङ्ग में एक नवीन आकर्षण था।

इसके बाद कई दिनों तक सुरेश की ओर देखने का उसका साहस नहीं हुआ। वह नहीं जानती थी कि सुरेश भी उसकी ओर देखता था या नहीं। नज़रों के आपस में मिलने से जो भावना उसके मन में उत्पन्न हुई थी वह प्रभाव की दृष्टि से तीव्र अवश्य थी किंतु अस्पष्ट—भय और एक पाप का अनुभव लिये हुए। और उसमें जैसे प्रकाश की एक किरण !

उनके बीच उपर्युक्त दृष्टि-मिलन के अतिरिक्त कभी कोई घटना नहीं घटी, यहाँ तक कि कभी दोनों में एक बात तक नहीं हुई। यद्यपि यूनिवर्सिटी के कई लड़के आते जाते इशारे बाज़ी करते। कुछ दुष्ट मनचले आवाज़ें भी कसते, लेकिन उसने सुरेश की आवाज़ कभी नहीं सुनी। यहाँ तक कि कभी रास्ते में भी जाने अनजाने मुठभेड़ नहीं हुई·· कभी कभी उमा को इस पर आश्चर्य होता। किंतु क्लास-रूम में वह

अवश्य आता था। फिर जब कभी उमा ने बहुत साहस से काम लेकर आँख उठाई भी तो सुरेश को हमेशा अपनी ओर से बेपरवाह पाया। कभी कभी ही ऐसा हुआ कि दृष्टि उठाने पर उमा को ऐसा अनुभव होता मानो प्रेम की एक निगाह अभी अभी उसकी काली काकुलों को चूमती हुई इधर से गुज़री है।

इस प्रकार एक अपरिचित से इतनी अनभिज्ञ किंतु उसकी उपस्थिति के अनुभव से इतनी भिज्ञ रहते हुए दिन बीतते गये। शायद उमा को यह खयाल था कि जीवन पर्यन्त इसी प्रकार दिन बीतते जायँगे। लेकिन चार दिन पहले एकाएक क्लास-रूम सूना सूना सा दिखाई पड़ने लगा, और आज भी ......

अपनी तल्लीनता में उमा को यह भी ध्यान न रहा कि गिलास कभी का भर चुका है। इधर पानी की धार पटाख की आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिरी उधर उसकी सहेलियाँ च़ा से ठहाका लगा कर हँसीं, तब उमा को होश आया। वह झेंपकर पीछे हटी और तिपाई से टेक लगाकर पानी पीने लगी ....लेकिन उसे इस बात का अनुभव नहीं हुआ कि उसकी सहेलियाँ उसके मन की दशा से भी परिचित हैं।

लड़कियों में से एक चंचल बोली—"अरी, मालूम भी है......।"

सबने शोखी से कान आगे बढ़ाये।

"अरी क्या ?"

"वह चला गया।"

शशि, जो सबसे अधिक चंचल थी, नाक पर उंगली रख कर भवों से उमा की ओर संकेत कर बोली—"चले गये कहो न।"

"हाँ, भूल हो गई। चले गये, चले गये।"

"पर कहाँ गये ?"

"न जाने।"

"न जाने ?"

क्या था ?…… ……वह क्या जाने !

कई महीने पहले की बात है कि फ्रान्सीसी साहित्य की एक कक्षा में उसने निगाह उठाई तो उसकी आँखें सीधी सुरेश की आँखों से जा मिलीं। सुरेश कोई नया छात्र नहीं था। वह दो साल से इस घन्टे में आमने सामने बैठे कुछ पढ़ते चले आ रहे थे। उन्होंने सरसरी निगाह से एक दूसरे की ओर अनेक बार देखा भी था किन्तु उस दिन बिना किसी प्रेरणा के जो दोनों की आँखें मिलीं तो घुल मिल कर रह गईं। कुछ क्षणों तक वे एक दूसरे की ओर देखने पर इस तरह विवश हो गये मानो उनकी पलकें आपस में उलझ गई हों। फिर एक दम उमा का हृदय ज़ोर से धड़का और जैसे उसकी निगाहें आकाश से पृथ्वी पर आ गिरी हों। इस प्रकार अनायास निगाहों के मिलने, मिलकर मिले रहने के बाद सहसा इस तरह तड़प कर अलग हो जाने के कष्ट प्रद अनुभव से पहले उसका चेहरा कानों तक लाल हो गया और फिर पीला पड़ गया…… लेकिन हर रङ्ग में एक नवीन आकर्षण था।

इसके बाद कई दिनों तक सुरेश की ओर देखने का उसका साहस नहीं हुआ। वह नहीं जानती थी कि सुरेश भी उसकी ओर देखता था या नहीं। नज़रों के आपस में मिलने से जो भावना उसके मन में उत्पन्न हुई थी वह प्रभाव की दृष्टि से तीव्र अवश्य थी किंतु अस्पष्ट—भय और एक पाप का अनुभव लिये हुए। और उसमें जैसे प्रकाश की एक किरण !

उनके बीच उपर्युक्त दृष्टि-मिलन के अतिरिक्त कभी कोई घटना नहीं घटी, यहाँ तक कि कभी दोनों में एक बात तक नहीं हुई। यद्यपि यूनिवर्सिटी के कई लड़के आते जाते इशारे बाज़ी करते। कुछ दुष्ट मनचले आवाज़ें भी कसते, लेकिन उसने सुरेश की आवाज़ कभी नहीं सुनी। यहाँ तक कि कभी रास्ते में भी जाने अनजाने मुठभेड़ नहीं हुई…… कभी कभी उमा को इस पर आश्चर्य होता। किंतु क्लास-रूम में वह

अवश्य आता था। फिर जब कभी उमा ने बहुत साहस से काम लेकर आँख उठाई भी तो सुरेश को हमेशा अपनी ओर से बेपरवाह पाया। कभी कभी ही ऐसा हुआ कि दृष्टि उठाने पर उमा को ऐसा अनुभव होता मानो प्रेम की एक निगाह अभी अभी उसकी काली काकुलों को चूमती हुई इधर से गुज़री है।

इस प्रकार एक अपरिचित से इतनी अनभिज्ञ किंतु उसकी उपस्थिति के अनुभव से इतनी भिज्ञ रहते हुए दिन बीतते गये। शायद उमा को यह खयाल था कि जीवन पर्यन्त इसी प्रकार दिन बीतते जायँगे। लेकिन चार दिन पहले एकाएक क्लास-रूम सूना सूना सा दिखाई पड़ने लगा, और आज भी······

अपनी तल्लीनता में उमा को यह भी ध्यान न रहा कि गिलास कभी का भर चुका है। इधर पानी की धार पटाख की आवाज़ के साथ ज़मीन पर गिरी उधर उसकी सहेलियाँ चश्र से ठहाका लगा कर हँसीं, तब उमा को होश आया। वह झेंपकर पीछे हटी और तिपाई से टेक लगाकर पानी पीने लगी·········लेकिन उसे इस बात का अनुभव नहीं हुआ कि उसकी सहेलियाँ उसके मन की दशा से भी परिचित हैं।

लड़कियों में से एक चंचल बोली—"अरी, मालूम भी है·····।"

सबने शोखी से कान आगे बढ़ाये।

"अरी क्या ?"

"वह चला गया।"

शशि, जो सबसे अधिक चंचल थी, नाक पर उंगली रख कर भवों से उमा की ओर संकेत कर बोली—"चले गये कहो न।"

"हाँ, भूल हो गई। चले गये, चले गये।"

"पर कहाँ गये ?"

"न जाने।"

"न जाने ?"

"हाँ भई, किसी से कह कर तो नहीं गये।"

"ऐ है, हो सकता है कहकर ही गये हों.........किसी से।"

इस पर सब लड़कियाँ उमा की ओर देखने लगीं। उमा निश्चेष्ट बैठी रही। यदि वह बोलना भी चाहती तो न बोल सकती।

शशि ने कहा—"भई मालूम होता है कि सचमुच किसी से कुछ कह नहीं गये, चुपके से खिसक गये।" फिर वक्ष पर हाथ मार कर बोली—"अपनी चीज़ों की जाँच पड़ताल कर लो। कुछ चुरा कर न चल दिये हों किसी का।"

"अरी नहीं। चोर तो नहीं दिखाई देते थे वह।"

"अच्छा, तो चोरों के क्या सींग होते हैं?"

"नहीं भई। बेचारे चुपचाप बैठे रहते थे।"

"तो क्या चोर ढोल पीटकर आते हैं?"

"ओफ़्फ़ोह, तुम तो हुज्जत करने पर उतारू हो......।"

दूसरी ने समर्थन किया—"सच कहती हो। बड़ी भोली सूरत पाई थी उन्होंने।"

"हाँ, यह मानना पड़ेगा। कभी किसी लड़की से हँसी मज़ाक़ नहीं करते थे। न छेड़ते न आवाज़े कसते।"

"ठीक है, ठीक है......लेकिन......।" शशि ने उपदेशात्मक ढंग से कहा—"लेकिन आपको मालूम होना चाहिये कि दिलों के सौदे चुपचाप भी हो जाया करते हैं......।"

"सच ?" एक ने शशि से पूछा—"लगता है कि तुम दिलों की व्यापारिन हो।"

"अजी हटो।" शशि ने ठुनक कर चुपके से फिर भवों द्वारा उमा की ओर संकेत किया—"हमें मत सताओ।"

"अजी, किस ध्यान में हो, क्लास का समय हो चुका। चलिये।"

इस पर खलबली मच गई। गिरी पड़ी किताबों और कापियों की तलाश होने लगी।

चलते चलते, उमा को चुप चाप बैठे देख कर एक सहेली ने कहा—"आओ उमा, चलोगी नहीं।"

"नहीं।"

"क्यों?"

उमा ने उत्तर दिया—"सिर में दर्द हो रहा है।"

यह सुन शशि ने बड़ी घबराहट प्रकट करते हुए उमा के हृदय पर हाथ रखकर कहा—"हाय राम, क्या बहुत अधिक दर्द है?"

दूसरी सहेली ने शशि का हाथ पकड़ कर उमा के माथे पर पटकते हुए कहा—"अरी, सिर यहाँ होता है।"

शशि ने सिर हिलाकर सांत्वना दी—"च, च, कोई बात नहीं, उम्र ही ऐसी है।"

"उम्र नहीं। मौसम खराब है।" यह कह दूसरी लड़कियाँ शशि को खींचती, ठहाके लगाती कमरे से बाहर निकल गई।

अकेली बैठी उमा ने एक नज़र फिर यूनिवर्सिटी के फाटक पर डाली जहाँ से सुरेश रोज़ गुज़रता था! इस समय वह फाटक कितना सुनसान था। धूल के नन्हें नन्हें बवंडर फाटक में आ जा रहे थे।

दो

चुपके चुपके मैं गीत किसी के गाता हूँ

इलाहाबाद के सिविल लाइन्स के चौराहे पर खड़े होकर यदि पश्चिम की ओर दृष्टि दौड़ाई जाय तो आधुनिक ढंग की एक दुकान दिखाई देगी जिसके बाहर सुन्दर साइन बोर्ड पर बड़े बड़े अक्षरों में 'माडर्न जनरल मर्चेन्ट्स' लिखा दिखाई पड़ेगा। यों बाहर से देखने से यह दुकान बड़ी भली दिखाई देती है और अन्दर जाने पर आपके हृदय पर उसके वातावरण का प्रभाव भी बड़ा सुखद पड़ता है, किन्तु उसमें काम करने वाले सुखद जीवन नहीं व्यतीत कर रहे हैं।

इस दुकान की नींव बेनी प्रसाद ने डाली थी। वह उन व्यापारियों में से थे जो अपने अंग्रेज़ ग्राहकों के स्वभाव को खूब जानते पहचानते हैं और जो अज्ञात ढंग से ऐसे ग्राहकों के दिलों को उभार कर उनसे रुपया बटोरने की कला में प्रवीण होते हैं। किन्तु जब बुढ़ापे ने आ दबाया, निगाह कमज़ोर हो गई, हाथ पाँव काँपने लगे तो इस दुकान के स्थापक चुपचाप घर बैठ गये। वैसे भी वर्षों उनके साथ काम करने के कारण उनका बड़ा लड़का रोशन काफ़ी होशियार हो गया था, इस लिये उन्होंने सारा भार बेटे के कंधों पर डाल दिया।

अब स्थिति यह थी कि रोशन कुछ वर्ष परिश्रम करने के बाद कुछ आराम तलब हो गया था। पर्याप्त आय और खुला हाथ होने के कारण

वह लाल परी का भी आशिक़ हो गया। अब तो यह हाल था कि दो पहर से ही वह नशे में धुत हो जाता। इस प्रकार काम में रुकावट पैदा होने लगी। वह तीन चार कक्षा से अधिक नहीं पढ़ पाया था और वह इस बात के भी विरुद्ध था कि वह मेहनत करे और उसका छोटा भाई सुरेश यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त करे। पिता के जीवित रहते तो उसकी दाल नहीं गली लेकिन उनके स्वर्गवास के बाद उसने सुरेश को पत्र पर पत्र लिखने शुरू किये कि तुरन्त लौट आओ। सुरेश ने लिखा कि परीक्षा में तीन चार महीने बाक़ी रह गये हैं इस लिये परीक्षा देकर आजाऊँगा। परन्तु रोशन को इसी बात से तो चिढ़ थी। उसने खर्चा भेजना बन्द कर दिया। लाचार हो सुरेश को अचानक वापस आना पड़ा। भाई से बड़े विवाद हुए किन्तु मां पहले ही मर चुकी थी, पिता की भी छाया न रही थी। अब उसका पक्ष लेने वाला कौन था। भाई कहता था कि बी० ए० पास करो या एम० ए० करो, आखिर में दुकान पर ही बैठना पड़ेगा। लाचारी वश अब दुकान थी, बड़ा भाई था और बी० ए० का असफल विद्यार्थी सुरेश।

यूनिवर्सिटी में भी सुरेश को अत्यधिक कंजूसी से काम चलाना पड़ता था, फिर भी उस वातावरण और वर्तमान वातावरण में आकाश पाताल का अन्तर था। यूनिवर्सिटी में वह जीवन की उच्चतम उन्नति के सपने देख सकता था किन्तु यहाँ दुकान की चार दीवारी से बाहर निगाह दौड़ाना असम्भव था।

दुकान में काम करते उसे पाँच छः मास बीत चुके थे। सुबह सुबह आना, दुकान खोलना, अन्दर बाहर की सफ़ाई कराना, हिसाब किताब रखना उसका काम था। ग्यारह बजे के क़रीब उसका बड़ा भाई, जो क़द में भी उससे बड़ा था, मलमल का कुर्ता पहने, सफ़ेद पाजामा लहराता आता। शराब खोरी और ऐयाशी के कारण उसका अंजर-पंजर ढीला हो गया था। शरीर सूखता जा रहा था, बाल पकने शुरू हो गये थे। दांत

पहले ही से कुछ कुछ दूरी पर थे, अब हिलने भी लगे थे। पढ़े लिखे लोग अपने नीचे काम करते देख उसे प्रसन्नता भी होती और हार्दिक संतोष भी। दोनों भाइयों के बीच कारबारी बात चीत के अतिरिक्त और कोई बात चीत कम ही होती थी। एक बजे के क़रीब जब ग्राहकों की कमी हो जाती तो रोशन बोतल का काग उड़ा कर काउन्टर के पीछे उसे रख लेता। फिर गिलास में शराब उँड़ेल कर उसे बड़े इतमीनान के साथ पीना शुरू कर देता। जैसे जैसे सुरूर बढ़ता, उसकी आँखों के डोरे लाल होते जाते, यहाँ तक कि दोनों आँखें बाहर को निकली सी पड़तीं। उस समय उसकी बात-चीत सुनने के क़ाबिल होती। लेकिन सुरेश को उससे कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह फ़ुरसत के समय सब से अलग थलग दुकान के एक कोने में बैठा कोई किताब पढ़ा करता या धीमे सुरों में कुछ गुनगुनाया करता।

एक दिन दोपहर के समय ऐसे ही एक मौके पर रोशन नशे में धुत होकर काउन्टर पर रक्खी बाँहों पर सिर टिकाये चुपचाप पड़ा था। सहसा उसने इस प्रकार सिर उठाया मानो कोई भूली बिसरी बात याद आगई हो। उस समय उसकी आँखें फैली-फैली थीं और उस पर नमी की एक तह दमक रही थी। उसने अपने सिर को इधर उधर घुमा कर देखा फिर क्षण भर को उसका सिर रुक गया। उसने कुछ कहना चाहा किन्तु उसका मुँह फूल कर रह गया। फिर उसने बड़े प्रयास से कहा—

"बेटे!"

सुरेश किताब पढ़ने में लीन रहा।

"बेटे!!" रोशन ने फिर कहा।

सुरेश ने सिर उठाया। दुकान में और कोई नहीं था। उसे असमंजस में देख रोशन ने कहा—"तुम्हीं को बुला रहा हूँ।"

सुरेश को आश्चर्य हुआ। वह उठा और काउन्टर के पास पहुँचा तो भाई ने कहा—"हम तुमको बेटा कह सकते हैं। पूछो क्यों? हूँ!"

सुरेश चुप रहा।

"हम क्या कह रहे हैं। पूछो क्यों? हूँ?"

सुरेश को उसकी 'पूछो क्यों' से बड़ी चिढ़ थी। परन्तु ऐसे अवसर भी आ ही जाते थे, अतएव उसने नीरस स्वर में पूछा—"क्यों?"

"शावाश! देखो, मेरा बाप मर गया है, और क्योंकि तुम मेरे भाई हो इस लिये तुम्हारा भी बाप मर गया है......ठीक?"

"ठीक।" सुरेश ने हामी भरी।

"और क्योंकि हम बड़े भाई हैं इस लिये हम बाप के स्थान पर हैं। इस तरह तुम हमारे छोटे हुए और इस नाते तुम्हें हम बेटा कह सकते हैं। समझे?"

"समझ गया।"

"क्या समझे..... लेकिन।" यह कह बड़े भाई ने अपनी खुमार भरी आँखों से छोटे भाई के चेहरे को ध्यान से देखा। अपना चंचल हाथ उठाया और फिर अँगुली से पहले उसकी ओर संकेत करते हुए अपनी बात जारी रक्खी—"लेकिन हम बड़े घाघ हैं, क्या समझे?"

सुरेश चुप रहा। इस पर भाई ने फिर उसकी ओर गौर से देखा, मानो उसकी खामोशी से उसे बड़ा कष्ट हो रहा हो। उसने आग्रह पूर्वक कहा—"क्या समझे?"

"आप बड़े घाघ हैं।"

"हां।" बड़े भाई ने जोर से सिर हिलाया, "हाँ, हम बड़े घाघ हैं, पूछो क्यों?"

सुरेश का जी चाहता था कि कपड़े फाड़ कर कहीं दूर भाग जाय। भाई के आग्रह पर उसने ऊब कर पूछा—"क्यों?"

"बेटा!" रोशन ने अपना दुर्गन्धित हाथ सुरेश के हाथ पर रख दिया—"बेटा! हमारा धर्म कहता है कि तुमको अच्छी अच्छी बातें बताएँ। देखो हम बड़े घाघ हैं। पूछो क्यों?"

"क्यों?" सुरेश ने बहुत ऊब कर फिर पूछा।

इस पर रोशन उठ कर खड़ा हो गया। वैसे भी उसका कद सुरेश से निकलता हुआ था, किन्तु काउन्टर के पीछे बने हुए चबूतरे पर खड़ा हो जाने से वह बहुत लम्बा दिखाई पड़ने लगा। उसने दोनों हाथ सुरेश के कंधों पर रख दिये। सुरेश को भाई की इस 'ओवर ऐक्टिंग' के कारण झुंझलाहट हो रही थी। इस पर बड़े भाई ने कुछ क्षणों तक और अपने बेतरतीब तथा भद्दे दांतों का प्रदर्शन किया फिर बड़े रहस्यपूर्ण स्वर में बोला—"उमा! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

सुरेश इस प्रकार पीछे हटा मानो उसे साँप ने डस लिया हो।

"हो हो हो.. ...हू हू हू......ही ही ही.. ....।" और रोशन दुकान से बाहर निकल गया।

सुरेश ने काउन्टर को इस प्रकार मजबूती से पकड़ लिया मानो वह धरती पर गिर पड़ने को हो।

सजी सजाई सुन्दर आलमारियों में पड़ी हुई प्रत्येक छोटी बड़ी चीज मानो चिल्ला चिल्लाकर कह रही थी—"उमा! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

सुरेश को बड़ी कोफ्त हो रही थी! उसने झपट कर कोने में से वह कापी उठाई जिस पर उसने कई मास पूर्व क्लास में बैठे बैठे यह वाक्य लिखा था।

उसने वह पन्ना फाड़ कर उसे जला देने का निश्चय कर लिया था। किन्तु फिर उसके हाथ रुक गये और उसने धीरे धीरे इस वाक्य पर होंठ रखते हुए धीमे स्वर में कहा—"उमा! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

तीन

लो फिर याद किसी की आई

इस घटना के कुछ ही दिन बाद एक दिन सुबह सुरेश ने दुकान खोली ही थी कि एक नवयुवती ने दुकान में प्रवेश किया। ग्राहक और मृत्यु का वैसे तो कोई समय निश्चित नहीं है लेकिन इतनी जल्द किसी ग्राहक का आना असाधारण बात अवश्य थी।

सुरेश ने इशारे से नौकर को रोक दिया, जो हाथ में झाड़ू लिये दुकान की सफाई करने को तैयार खड़ा था, और उस उच्चवर्ग की दिखने वाली युवती से आदर पूर्वक बोला—"कहिये, क्या सेवा कर सकता हूँ।"

युवती ने कान में पड़े हुए काँटे को छूते हुए कहा—"मुझे टायलेट का कुछ सामान और कुछ दूसरी चीज़ें खरीदनी है......अगर आपको अवकाश हो तो, नहीं तो....।" यह कह उस युवती ने एक निगाह उस नौकर की ओर डाली जो अभी तक झाड़ू लिये तैयार खड़ा था। वह समझे था कि सम्भवतः युवती को एकाध चीज खरीदनी होगी, फिर उसे तुरन्त अपना काम करना होगा।

अनाड़ी नौकर की सूरत देख सुरेश को भी कुछ बुरा सा लगा। उसने तनिक डपट कर कहा—"जाओ बाहर बैठो, मैं आप बुला लूँगा।"

अब युवती को कुछ संतोष हुआ। उसने बटुए में से एक काग़ज़ निकाला और सूची में से चीजों के नाम बोलने लगी। उसने लगभग सौ रुपए से ऊपर का सामान खरीदा। सुरेश सामान भी जुटा रहा था किन्तु साथ ही साथ वह उस युवती के चेहरे को भी ध्यान से देखने का प्रयास कर रहा था। न जाने क्यों उसके मन में बार बार यह विचार उत्पन्न होता था कि उसने इस युवती को कहीं देखा है। कहाँ देखा है?......शायद यूनिवर्सिटी में!

जब सामान एक जगह पर ढेर हो गया तो उसने पूछा—"आप एक बार फिर याद कर लें, यदि कोई चीज़ रह गई हो तो बताइये।"

युवती ने सूची पर दोबारा नज़र डाली और फिर सिर हिला कर बोली—"नहीं, थैंक यू......।"

"अच्छा, तो मैं इसका एक ही बड़ा सा बंडल बंधवाए देता हूँ।" यह कह कर उसने नौकर को आवाज़ देने के लिये मुँह ऊपर उठाया ही था कि युवती ने बात काटते हुए कहना शुरू किया—"क्या हमने एक दूसरे को पहले भी कहीं देखा है......यद्यपि यह पूछते हुए बड़ा संकोच सा हो रहा है।"

यह सुन सुरेश भी काउन्टर पर कोहनी टेक कर खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर एक प्रसन्न मुस्कान खेलने लगी। वह बोला—"सच्ची बात तो यह है कि जब से आप आई हैं, स्वयं मेरे दिमाग़ में भी यही विचार चक्कर काट रहा है। परन्तु......आप जानती ही हैं दुकानदार को प्रतिष्ठित महिलाओं के सम्बन्ध में कितना सावधान रहना पड़ता है...।"

"धन्यवाद!" युवती ने चेहरे पर से बालों की एक लट को हटाते हुए कहा—"......और अगर मैं भूलती नहीं तो यूनिवर्सिटी में एक दूसरे को देखने का संयोग हुआ था।"

"जी, यही बात है।"

किसी स्त्री की स्मृति में अस्पष्ट रूप से रहना भी पुरुष के लिये

प्रसन्नता की बात तो होती ही है, इसलिये सुरेश के हृदय पर भी इस बात चीत का बड़ा सुखद प्रभाव पड़ा। उसने अपनी बात जारी रखने के उद्देश्य से कहा—"माफ़ कीजियेगा, आप पहले से बहुत बदल गई हैं, नहीं तो मुझे आपको पहिचानने में इतनी कठिनाई न होती।"

इस पर युवती तनिक झेंप कर बोली—"मेरी 'मैरेज' हो गई है। बी० ए० का 'रेज़ल्ट' भी नहीं निकलने पाया था......।"

"आप पास तो हो गईं न......।" सुरेश ने तनिक निस्संकोच भाव से मुस्कराते हुए पूछा।

"जी हाँ।"

"बधाई।"

"धन्यवाद।"

"क्या वे...मेरा मतलब है कि आपके....'वह'....यहीं पर....।"

"जी हाँ, वह यहीं पर हैं...मैजिस्ट्रेट हैं...मिस्टर सक्सेना का नाम तो सुना होगा आपने।"

"जी हाँ, खूब खूब।"

"कल मैं यहाँ से गुज़री तो मैंने आपको दुकान पर देखा। मुझे आश्चर्य हुआ कि आप यहाँ कहाँ।"

"यह मेरे भाई साहब की दुकान है।"

"ओह...बात यह है कि मैं शादी के बाद बहुत कम यहाँ रही। मैंने कल ही आपको देखा। सच पूछिये तो मैं जान बूझकर सुबह ही सुबह दुकान पर पहुँच गई।"

सुरेश यह सुन कुछ असमंजस में पड़ गया। कुछ देर तो बड़ी बेढंगी सी खामोशी छाई रही, फिर श्रीमती सक्सेना ने पूछा—"आप उमा को जानते हैं?"

सुरेश का हृदय मानो गले में आकर अटक गया हो। उसे सूझ नहीं रहा था कि इस बात का क्या जवाब दे।

"कौन उमा ?"

"वह फ्रेन्च के क्लास में आपके सामने बैठती थी। मैंने फ्रेन्च तो नहीं ले रक्खी थी पर वह मेरे ही सेक्शन में पढ़ती थी।"

अब सुरेश को जान बूझकर अनजान बन माथे पर बल डाल कर गौर करना पड़ा। युवती ने उसे याद दिलाने के उद्देश्य से कहना शुरू किया—"साँवली सी लड़की थी। काले रंग के बोझिल बाल, बारीक सबुक भवें, पतले पतले से होंठ, दाँतों की लड़ी सुन्दर, बड़ी बड़ी भीगी सी आँखें।"

"हाँ, जी..जी, सूरत तो याद आती है...।"

यह कह कर उसने श्रीमती सक्सेना की ओर देखा तो उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो वह आँखों ही आँखों में कह रही हो—'बेवफा पुरुष'

वह बेचारा चुप रहा। उसे कोई बात सूझ नहीं रही थी। श्रीमती सक्सेना ने एक क़दम आगे बढ़ कर मधुर स्वर में कहा—"मालूम है ?"

सुरेश ने क्षण भर के लिये श्रीमती सक्सेना की नज़र से नज़र मिलाई।

"वह आपको प्यार करती थी।"

यह सुनते ही मानो सुरेश के मन में किसी ने उछल कर कहा—"क्या वह भी ?"

"आप जानते हैं, आपके एक दम चले आने से उसकी क्या दशा हुई ?"

सुरेश को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह नहीं जानता था कि मामला यहाँ तक पहुँच चुका था उसने स्वप्न में भी न सोचा था कि वह उससे प्रेम करती थी।

"मैं यहाँ आने पर मजबूर किया गया था, लेकिन मुझे इसके बारे में बिलकुल पता नहीं था नहीं तो...।"

"नहीं तो क्या....आप कैसी भोली बातें करते हैं। आप कहते हैं कि आप उसके प्रेम से अनभिज्ञ थे। यह कैसे हो सकता है कि पुरुष को कोई स्त्री चाहे और उसे इसका पता न हो...।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे इस बात का बिलकुल पता नहीं था। मैं तो सिर्फ़ यह जानता था.... सिर्फ़ यह....।"

"क्या ?"

"सिर्फ यह कि मैं उससे प्यार करता था, करता हूँ और करता रहूँगा...।"

'तब आपने उसे कभी एक खत तक क्यों नहीं लिखा ?"

"चाहता था लिखना, पर मैंने आपको बताया न, मैं नहीं जानता था कि वह मुझ से प्रेम करती थी....लेकिन अब....अब वह कहाँ है ?"

"मसूरी में।"

"पता ?"

श्रीमती सक्सेना मुस्कराईं—"जब आपको अभी तक पता ही नहीं था कि वह भी आप से प्रेम करती थी तो क्या मेरे कहने से एक दम चिट्ठी लिख दीजियेगा।......अरे साहब अब इन्तजार कीजिये कि पहले वह आपको पत्र लिखे।"

"उसको मेरा पता मालूम नहीं।"

"आप इन बातों की चिन्ता छोड़िये। अब तो यह सोचिये कि कहीं उसकी शादी तो नहीं हो चुकी...... अच्छा, नौकर बुलवाइये मेरे सामान का बंडल बना दे।"

सुरेश के हृदय में उस युवती की बातों ने खलबली सी मचा दी थी और वह युवती उसकी इस दशा को देख आनन्दित हो रही थी। जाते जाते उसने धीरे से कहा—"उमा की अभी शादी नहीं हुई।"

चार

न सोचा न समझा, न सीखा न जाना
मुझे आ गया, खुद बखुद दिल लगाना

श्रीमती सक्सेना का आगमन तो सुरेश के लिये ऐसा ही था जैसे आकाश से कोई देवता उतरे और एक सुखद समाचार सुना जाय।

दो तीन दिन तक सुरेश इस मुलाक़ात और उसमें जो बातें ज्ञात हुईं उनके विषय में सोच सोच कर प्रसन्न होता रहा। किन्तु फिर मन में सन्देहों ने सिर उठाया। हो सकता है कि उसके साथ मज़ाक़ किया गया हो। आखिर श्रीमती सक्सेना ने उमा का पता बताने में क्यों आना कानी की।

धीरे धीरे उसके दिमाग़ की उलझनें बढ़ने लगीं। वह भावुकता की उस मंज़िल पर पहुँच चुका था जहाँ से लौटना उसके बस की बात नहीं थी। वह नहीं जानता था कि ये सब बातें ग़लत सिद्ध हुईं तो वह क्या करेगा।

एक दिन सुबह की डाक में उसने एक ऐसा लिफ़ाफ़ा और उस पर एक ऐसी लिखावट देखी जो सब से भिन्न थी। उमा के पत्र की बात सोचने पर उसकी अंगुलियाँ काँपने लगीं। क्षण भर को तो उसके हाथों में इतनी सी शक्ति भी बाकी नहीं रही कि वह लिफ़ाफ़ा खोल कर पढ़ सके।

उसने घड़ी की ओर देखा। अभी भाई के आने में लगभग आध पौन घन्टा बाक़ी था। उसने इस समय का लाभ उठा लेना ही उचित समझा

और काउन्टर से उठ कर अपने मन पसन्द कोने में जाकर बैठ गया।

लिफ़ाफ़ा खोला तो उसका विचार सही निकला। यह उमा का पत्र था। लिखा था :—

क्वार्टर नं० १४, न्यूलैंड, कैमल्सबैक रोड,
मसूरी, २२ जून १९३०

सुरेश जी! नमस्कार।

— हाथ में क़लम लिये सोच रही हूँ कि क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ।

यह न समझियेगा कि मेरे पास कुछ लिखने को नहीं है, बल्कि वास्तव में लिखना इतना अधिक है कि सूझता नहीं, कहाँ से शुरू करूँ।

कितनी अजीब, कितना विचित्र है यह प्रेम! कितना पुराना शब्द है यह, लेकिन कितना नया। कितना अर्थहीन है यह जीवन परन्तु कितना अर्थपूर्ण है यह प्रेम!!

सब से पहले तो मुझे अपनी उस प्यारी सखी को धन्यवाद देना है जिसने आपको ढूँढ़ निकाला। नहीं तो कुछ दिनों के बाद वह समय भी आ जाता कि यदि आप दर दर की खाक छानकर भी मेरी खोज करते तो मुझे न पा सकते। कारण? आपका प्रेम!

संसार के अन्य दुख कितने अधिक हैं, अनगिनत समस्याएँ हैं जिनका कोई हल नहीं। जीवन के इस तपते हुए रेगिस्तान में प्यार की बातों की रंगीन छाया ही पानी बिन मछली की भांति व्याकुल हृदय को सांत्वना या शान्ति प्रदान करती है।

किन्तु मैं नहीं जानती कि कब मैं आप के प्रेम की शीतल छाँव में चुपचाप जा बैठी, इतनी खमोशी से कि आपको भी कुछ खबर नहीं हुई। आपको क्या, स्वयं मुझे ख़बर नहीं हुई।

वास्तव में मेरा जीवन दुखों का भण्डार है। एक लम्बी काली छाया के नीचे डर डर कर बढ़ाती रही हूँ। मेरी न माँ जीवित है, न मैं पिता का

प्रेम पा सकी। न कोई लाड करने वाला न कोई नाज़ उठाने वाला। मुझे प्रेम कहाँ सूझ सकता था। मुझे उन लड़कियों से ईर्ष्या होती है जो अपने प्यारे माता पिता की छत्र छाया में बढ़कर उमंगों और तरंगों की अवस्था में पहुँचती हैं। तब उनको प्यार करने वाला कोई उनके मनमन्दिर का देवता आता है। संन्ध्या की काली काकुलों की छाया और तारों के मंडप के नीचे वे अपने आपको प्रेमी की बाँहों में पाती हैं। उस समय उनकी चमकीली आँखें नाचती हैं, मन नाचता है, उमंगें और तरगें नाचती हैं और फिर वे अपने आपको अपने प्रीतम की बलिष्ट भुजा में ढीला छोड़ देती हैं और मधुर गीत गाती तथा सुरीली तानें उड़ाती हुई प्रेम की नदी की सतह पर उनके जीवन की छोटी सी नौका वह निकलती है......उनकी आँखों से निकल शराब में से खींची हुई किरणें उनके मनमोहन के हृदय को तड़पाती हैं और उनके सौंदर्य के वश में आये हुए प्रेमी के प्यासे होंठों में से निकलते हुए प्रेम में शराबोर ठंडी आहें उनकी छाती में ठंडक पहुँचाती हैं... ...मैं उन भाग्यवती लड़कियों में नहीं हूँ... ....मैंने पिछले जन्म में न जाने क्या किया था कि आज उसका दंड भोग रही हूँ...सच मुच मुझे प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु.... ... कहते हैं कि प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है। सौभाग्य या दुर्भाग्य से मुझे आप से प्रेम हो गया, किन्तु आपका प्रेम शरद ऋतु के समान इतने दबे पाँव आया कि मुझे उसका पता तक न चला। और पता कब चला ?

मुझे यह बात उस समय ज्ञात हुई जब उदास आँखें लाल होंठों और चाँद से मुखड़े वाला मेरा मनमोहन सदा के लिये मुझे छोड़कर चला गया था। न मेरे पास उसका पता न उसके पास मेरा। न मुझे यह पता कि वह मुझसे प्रेम करता है और न उसे यह मालूम कि मैं सदैव के लिये उसकी दासी बन चुकी हूँ।

साँझ हो रही है, दिये में तेल नहीं है। मेरी अत्यन्त वृद्धा दादी चारपाई पर पड़ी कराह रही हैं। उनकी आवाज़ खड़खड़ा रही है। बाहर

हवा आहें भरती हुई खड्डों में डूब डूब कर उभर रही है।

मैं हूँ आपकी केवल एक स्मृति—
उमा

यह पत्र पढ़ कर सुरेश के हृदय में ऐसी हलचल उत्पन्न हुई कि उस दिन उसने यह पत्र बार बार पढ़ा। भोजन तक नहीं किया। संध्या समय, सौभाग्य से उसका भाई सिनेमा देखने चला गया तब उसने संतोष की साँस ली। उसने देखा कि दिन भर केवल पानी पी पी कर उसके होंठों पर पपड़ियाँ जम गई हैं और चेहरे से दुर्बलता प्रकट हो रही है। उसने एक बार फिर उमा का पत्र पढ़ा और ओरेंज कश मँगवा कर उसके साथ कुछ बिस्कुट खा लिये। अब उसे पहले की अपेक्षा अपनी हालत कुछ अच्छी महसूस हुई।

उसने क़लम हाथ में लेकर तनिक सोचा और फिर लिखना आरम्भ किया।

रानी—कुमारी उमा

आपका प्यारा पत्र मिला। मैंने उसे पढ़ा और उसके बाद मुझे पता नहीं क्या हुआ। मेरा जो हाल हुआ उसका वर्णन नहीं हो सकता। न भूख रही न प्यास, न कुछ बोल सकता था न सोच सकता था।

आपके प्रेम ने मेरा जो हाल कर दिया था वह आपको अपनी सहेली के पत्र द्वारा मालूम हो गया होगा। और यह अच्छा ही हुआ कि मेरी दुख भरी कहानी किसी और ने कह सुनाई नहीं तो यदि यह कार्य मुझे करना पड़ता तो न जाने क्या होता।

आप अपने को अभागिनी कहती हैं, लेकिन जिस किसी को भगवान ने इतना सुन्दर रूप दिया हो भला उसके सौभाग्य में किसे संदेह हो सकता है। भाग्यहीन वह है जो उन होंठों तक पहुँच नहीं सकता, जिसको उन घने केशों की छाँव तले क्षण भर को चैन लेने का अवसर नहीं मिल सकता।

वास्तव में जब इस हृदय में आपका प्रेम उत्पन्न हुआ तब मेरी आँखों में आँसू आ गये। सोचा इस नादान दिल ने बड़े साहस से काम लिया है, इसने सूर्य पर हाथ डाला है, स्वयं ही जल कर भस्म हो जायगा।

मेरा विचार सही निकला। दिल नादान तो था ही, आ गया आप पर। लेकिन न मेरे दिमाग़ ने दिल का साथ कभी दिया और न दिल ने दिमाग़ का।

दिल धीरे धीरे सुलग रहा था कि मेरे सौभाग्य से आपकी सहेली से भेंट हो गई।

आज मेरा मन इतना बेक़ाबू हो रहा है और मस्तिष्क में इतनी इतनी प्रकार की भावनाएँ उठ रही हैं कि मैं आपको ठिकाने से पत्र भी नहीं लिख पा रहा हूँ...केवल आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैंने स्वयं को आपके प्रेम के योग्य कभी नहीं समझा। यदि मुझे सचमुच विश्वास हो जाय कि आपके कोमल हृदय में मेरे लिये थोड़ा सा स्थान है तो मारे खुशी के पागल हो जाऊँ।

सदैव आपका बना रहने पर विवश—

सुरेश

पांच

क्यों समझाने वाले समझाये जाते हैं,
दिवाने को और दीवाना बनाये जाते हैं !

जिस दिन सुरेश को अपने पत्र का उत्तर मिलने की आशा थी उस दिन उमा का कोई पत्र नहीं आया। इसके बाद जब कुछ दिन और बीत गये तो उसे अत्यधिक चिन्ता हुई। एक एक क्षण काटना उसके लिये कठिन हो रहा था।

कभी यह खयाल आता कि सम्भव है मेरा पत्र उसके किसी और सम्बन्धी के हाथ लग गया हो। न जाने बेचारी को किन किन कष्टों का सामना करना पड़ा हो, या न जाने और क्या विपत्ति पड़ी हो।

इस प्रकार सोचते सोचते उसके दिमाग़ को एक बात सूझी कि क्यों न उमा की सहेली श्रीमती सक्सेना अर्थात् मि० सक्सेना मैजिस्ट्रेट की पत्नी से पता चलाया जाय। सम्भव है उन्हें कोई खबर मिली हो।

आशा की इस किरण के इशारों पर नाचता हुआ वह रात को दुकान बन्द करने के बाद साढ़े नौ बजे के क़रीब उनके बंगले पर पहुँचा। संयोग से श्रीमती सक्सेना भोजन के बाद बाहर लान पर ही बैठी थीं। उनके साथ कुछ और महिलाएँ भी थीं जिन्हें देख सुरेश को तनिक संकोच हुआ, किन्तु श्रीमती सक्सेना ने उसे देख लिया। पुकार कर बोलीं—

"आइये आइये सुरेश बाबू।"

वह निकट पहुँचा तो फिर बोलीं—"अच्छा तो आप रुपया लेने आये हैं। ठीक है, आज आपका हिसाब चुकता कर दिया जायगा।"

सुरेश ने घबरा कर इनकार में सिर हिलाना चाहा तो उन्होंने वहाँ बैठी महिलाओं की दृष्टि बचाकर आँख मार कर इशारा किया और बोलीं—"अफ़सोस है कि मैंने आपका भेजा हुआ हिसाब अभी तक नहीं देखा। लेकिन कैरम की यह आखिरी बाज़ी खतम हुई जाती है। इसके बाद आपका हिसाब किताब देखूँगी।.........मुझे आशा है कि बीस पचीस मिनट में हम निपटा लेंगे।"

सुरेश थोड़ा एक ओर हटकर कुर्सी पर बैठ गया और खेल के खतम होने की प्रतीक्षा करने लगा।

पड़ोस की महिलाओं ने खेल समाप्त होने पर जाने की आज्ञा ली और चली गईं। उनके चले जाने के बाद श्रीमती सक्सेना ने बड़े तपाक से कहा—"अच्छा, कुर्सी आगे खिसकाइये। माफ़ कीजियेगा, बिना इस तरकीब के हमें एकान्त नहीं मिल सकता था........।"

"मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने आपको असमय कष्ट दिया है।"

"बिलकुल नहीं, बल्कि कहना चाहिये कि बड़े अच्छे मौक़े पर आये हैं, क्योंकि इस वक्त वे भी क्लब घर गये हुए हैं।"

"तो क्या आप क्लब नहीं जातीं ?"

"जाती हूँ, लेकिन आज कल वे एक ड्रामा स्टेज करने का रिहर्सल कर रहे हैं। दो चार दिन रिहर्सल मैंने भी देखा लेकिन मज़ा नहीं आया, इस लिये मैंने भी कह दिया कि आप हो आया करें। मैं यहीं पर बैडमिन्टन खेल लेती हूँ।"

"यह भी ख़ूब प्रोग्राम है।"

"अच्छा, तो बताइये कोई चिट्ठी विट्ठी आई ?"

"जी आई तो थी, लेकिन.........।"

"लेकिन क्या ?"

1803

"बस एक ही चिट्ठी आई। मैंने उसको जवाब भी दे दिया था। इसके बाद न जाने क्यों अभी तक कोई खबर नहीं मिली। मैंने स्वयं इसलिए फिर नहीं लिखा कि कहीं और किसी के हाथ मेरी चिट्ठी न पड़ गई हो। इसीलिये आप से मिलने चला आया।"

"अपनी दादी की मृत्यु की खबर तो उसने भेजी होगी।"

सुरेश ने आश्चर्य से पूछा—"क्या दादी मर गईं उनकी ? पहली चिट्ठी में उन्होंने दादी की चर्चा की थी। पर मुझे इस बात की कोई सूचना नहीं मिली कि उनका देहान्त हो चुका है।"

"मुझे आज ही खबर मिली है। बेचारी बहुत परेशान है। दादी के अतिरिक्त दुनिया में उसका कोई नहीं था। यद्यपि दादी व्यवहारिक दृष्टि से बेकार थी। उसे उससे कोई लाभ नहीं था, लेकिन फिर भी कुछ सहारा तो था।"

"अच्छा, तो मंसूरी में रहती थीं उनकी दादी ?'

'जी हाँ.........मुझे अधिक विस्तार से तो मालूम नहीं, पर इतना मालूम है कि उनके दादा ने मसूरी में कुछ क्वार्टर बनवाये थे। एक एक कमरे के क्वार्टर हैं, जहाँ ग़रीब लोग रहते हैं। थोड़ा बहुत किराया जो वसूल होता था, उसी से उसकी दादी का निर्वाह होता था। उमा के दूसरे सम्बन्धी अच्छे खाते पीते लोग हैं। सम्भवतः उसके चाचा ने बचपन में उसके माता पिता की मृत्यु हो जाने पर उसका पालन पोषण किया था। इम्तहान देने के बाद वह अपनी दादी के पास चली गई थी। वह सदा बीमार रहती थीं, चल बसीं।"

"यह तो बेचारी के लिये बुरा हुआ।"

"जी हाँ, और क्या।"

"लेकिन आश्चर्य की बात है कि उन्होंने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा... मुझसे कुछ अप्रसन्न तो नहीं हैं।"

"अरे नहीं सुरेश बाबू ! आप भी किस चक्कर में पड़े हैं। दादी

की दशा अधिक बिगड़ गई होगी, बस इसीलिये वह कुछ लिख नहीं पाई।"

यह सुन सुरेश ने चुपचाप सिर झुका लिया।

"आप लेमनेड पीजियेगा या शरबत?"

"जी कुछ नहीं, धन्यवाद।"

"खाली खूली धन्यवाद से काम नहीं चलेगा। लेमनेड मँगवाये लेती हूँ।"

जब सुरेश ने लेमनेड के लिये गिलास को मुँह लगाया तब श्रीमती सक्सेना ने तसल्ली देते हुए कहा—"आप चिन्तित न हों। हो सकता है कि उस ने चिट्ठी भेजी हो। आपको यदि आज नहीं तो कल मिल ही जायगी। वह बेचारी तो स्वयं परेशान है। आपको तो चाहिये कि आप ढारस बँधाएँ न कि आप स्वयं इतने निराश हुए जाते हैं।"

सुरेश के शुष्क होंठों पर मुस्कराहट उत्पन्न हुई—"आप का कहना ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगा।"

"मुझे आपसे यही आशा थी। अच्छा, इस मामले में आप निश्चिन्त हो जाइये और यह बताइये कि यहाँ आप कैसा जीवन बिता रहे हैं।"

"बड़ा नीरस, निर्जीव बल्कि कष्टप्रद।"

"क्यों?"

"आप कारण जान कर क्या कीजियेगा। बस यह समझ लीजिये कि परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी हैं।"

"अरे, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे स्वप्न में भी यह खयाल नहीं था कि आप को सिवाय प्रेम के और भी कोई दुख है।"

"यदि मेरी परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं तो आप ही सोचिये कि बी० ए० फ़ाइनल के इम्तहान से मैं क्यों भाग आता।

"ठीक है।"

"इस में मेरे भाई साहब का हाथ था।"

"उनको इस में क्या आपत्ति थी ?"

"वह नहीं चाहते थे कि मैं आगे पढ़ूँ, बल्कि बी० ए० का इम्तहान भी पास कर सकूँ।"

"लेकिन क्यों ?"

"वह खुद अनपढ़ है.......।"

"आपके माता पिता......?"

"वे मर चुके हैं।"

"लेकिन यह कार बार तो अच्छा है।"

"अच्छा तो है।"

"इस में आपका भी हिस्सा है ?"

"लेकिन इस वक्त तो सारे काले सफ़ेद के मालिक भाई साहब हैं..।"

"ठीक है। लेकिन आप अपना हक़ न छोड़िये। नातजरबेकार आदमियों वाली बातें न कीजिये। आप तुरन्त अपने भाई से जायदाद और दुकान की आमदनी के बारे में फ़ैसला कीजिये, कोई बात भाग्य पर मत छोड़िये।"

सुरेश अनुभवहीन तो था ही। उसने बड़ी बड़ी मासूम आँखों से श्रीमती सक्सेना की ओर देखा। फिर बोला—"लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ।"

"अरे, आप सचमुच बड़े ही भोले हैं। आप बालिग़ हो चुके हैं, आप जो चाहें कर सकते हैं।"

सुरेश तनिक रुका, फिर बोला—"आप की क़ीमती राय के लिये धन्यवाद। अच्छा, अब आज्ञा दीजिये।"

"बहुत अच्छा, लेकिन भाई से फ़ैसला ज़रूर कीजियेगा। अरे जब वे आपका जीवन बनाने में दिलचस्पी नहीं रखते, और फिर मैं देखती

हूँ कि शराब की लत भी लगी हुई है तब इसका साफ़ मतलब यह है कि सारी पूँजी का सफ़ाया करके आपको खमखाह संकट में डालेंगे।"

श्रीमती सक्सेना सुरेश को फाटक तक छोड़ने के लिये आईं और कहा—"आपको जब कभी ज़रूरत महसूस हो, आप निस्संकोच मेरे पास चले आइयेगा।"



अब और न तड़पाओ
या हमको बुला भेजो, या आप चले आओ ।

वह रात सुरेश ने बड़ी बेचैनी में काटी । उसने एकाएक अपने आपको उमा के और भी निकट महसूस किया । मानो दुनिया में उनका एक दूसरे के सिवाय कोई न हो ! उमा की याद उसके गले से लिपट गई !

श्रीमती सक्सेना का विचार ठीक निकला, क्योंकि दूसरे दिन पहली डाक से उमा का पत्र आया । सुरेश को लिफ़ाफ़ा पहचानने में कोई कठिनाई न हुई । नौकर दुकान की सफ़ाई में लगे थे । उसने एक अलग कोने में बैठकर लिफ़ाफ़ा फाड़ा । लिखा था—

"मेरे मनमोहन !"

अवश्य ही आपको मेरी चिट्ठी का बहुत इन्तज़ार रहा होगा, लेकिन दुख है कि आपको पत्र लिखने में असमर्थ थी ।

हुआ यह कि मेरी दादी की तबियत और ख़राब हो गई । मुझे छोड़ उनका संसार में कोई न था । यहाँ तक कि मेरे चाचा को भी, जिन्हों ने पाल पोस कर मुझे इतनी बड़ी किया, उन से न जाने कैसा वैर था । वे सदा यही कहते थे कि तुम्हारे दादा का सारा रुपया इसने अपने मायके वालों को खिला डाला, यहाँ तक कि उन बेचारे के पास कुछ भी नहीं रह

गया । इसके अतिरिक्त और बीसों प्रकार के आरोप लगाये जाते थे बेचारी दादी पर । लेकिन जहाँ तक मुझे पता है, ये सब आरोप निराधार हैं ...मेरी दादी बड़े सरल स्वभाव की स्त्री थीं.......परन्तु इन बातों को छोड़िये । मैं खाहमखाह आपको परेशान करने के लिये घरेलू झगड़ों को ले बैठी ।

दादी की आयु बहुत अधिक थी । लम्बे समय से दम्मे के रोग से पीड़ित थीं । मैंने अन्तिम दिनों में जो कुछ मुझसे बन पड़ा उनकी सेवा की । लेकिन मृत्यु से कौन लड़ सकता है । जिस रात मेरी दादी का देहान्त हुआ, वास्तव में मुझे कोई असाधारण दुख नहीं हुआ या अधिक सही शब्दों में, मैं जीवन में कभी इतनी प्रसन्न ही नहीं हुई कि किसी भी दुख से मेरे हृदय-जगत में किसी परिवर्तन का अनुभव हो । लालटेन जल रही थी । दादी कई दिनों से उखड़ी उखड़ी साँसें ले रही थीं, जैसे वायु किसी झड़े-सूखे पेड़ की टहनियों और पत्तियों के बीच में से होकर गुज़र रही हो । फिर एक दम मद्धिम होते होते साँस एकाएक रुक गई.........मानो उन्हें शान्ति मिल गई हो ।

यह कोई आशा के विपरीत घटना नहीं थी.........मैंने एक सफ़ेद चादर स्वर्गीया को पाँव से सिर तक उढ़ा दी और कमरे से बाहर निकल आई । चारों ओर नीरवता का राज्य था और रात का पिछला पहर । हमारे क्वार्टरों के निकट शान्त वृक्ष मानो मातमी लिबास पहने चुपचाप खड़े थे । पहाड़ियाँ रात के अँधियारे वातावरण में दम साधे लेटी थीं ......

मैं न जाने कब तक वहाँ खड़ी रही । ऐसा लगता था मानो समय एक जगह रुक गया है । कोई चीज़ गतिशील न दिखाई देती थी । इस उदास शून्य में धीरे धीरे कुछ रेखाएँ उभरीं जिन्होंने अन्त में मिल जुल कर आपका रूप धारण कर लिया । यदि आप मुझसे पूछें कि मुझे आपकी क्या चीज़ सब से अधिक पसन्द है तो मैं आपको यह उत्तर दूँगी कि मुझे

आपकी आँखों की गहराई और इस गहराई में सिर झुकाये हुए बैठी उदासी पसन्द है। या शायद मेरा उदास हृदय आपकी उदासी को प्यार करता है... ...

लेकिन कभी सोचती हूँ कि भला आप क्यों उदास होने लगे। आप को क्या दुःख हो सकता है। सम्भव है कि जो उदासी मुझे आपकी आँखों में दीखती है वह मेरी ही आँखों की उदासी का अक्स हो......

यदि यही बात है तो हे मेरी उदासी को अपनी आँखों में शरण देने वाले! मैं झुक कर तेरे चरण चूमती हूँ। काश! आप उस रात मेरे पास होते! उस रात मुझे आपकी कितनी अधिक आवश्यकता थी मैं आपकी छाती पर सिर रख कर आँखें मूँद लेती और कहती, अब मैं न कुछ बोलूँगी, न सुनूँगी और न सोचूँगी, अब आप मेरी जगह सुनें, बोलें और सोचें।

सुनो, मेरे मन मन्दिर के देवता! क्या कभी ऐसा हो सकेगा जब आप मेरे होंठ चूम कर मुझे एक ओर बैठा कर कहेंगे, लो मेरी रानी! अब तुम यहाँ इतमीनान से बैठ जाओ। तुम्हारा काम केवल मुस्कराना है, तुम्हारा काम केवल फूल से गालों का चुम्बन देना है, तुम्हारा काम सिर्फ़ सब कुछ भूल जाना है।

मैं नहीं जानती कि मैं ये अच्छी बातें लिख रही हूँ या बुरी। परन्तु जो कुछ मेरे मन में है सो लिख रही हूँ—बुरा या भला। मनुष्य के हृदय का संसार भी कितना विशाल है। वहाँ नीले आकाश हैं, चितकबरी बदलियाँ है, सुहावने सपने है, रंग बिरंगे फूल हैं, देतवाओं की प्रशस्ति में गाये जाने वाले गीत हैं, और वहीं पर अँधेरी रातें हैं, अँधेरे खड्ड हैं। अथाह गहराइयाँ है, पापमयी अँधियारियाँ है। यह सब कुछ है, इसीलिये मनुष्य अपने मन में झाँकता हुआ डरता है और यदि मन के अन्दर झाँकने पर विवश हो जाता है तो फिर ज़बान से उसका वर्णन करने से कतराता है। परन्तु मैं किसी ग़ैर से अपने मन की बात नहीं बता

रही हूँ। यदि कोई ऐसा करे भी तो ग़ैर की समझ में कहाँ आ सकता है।.....हृदय से केवल हृदय ही बात कर सकता है, हृदय की बात हृदय ही समझता है, हृदय के लिये हृदय ही हँसता है, हृदय के लिये हृदय ही रोता है....

ओफ़! न जाने किधर को बहा ले जाती है मेरे हृदय की व्याकुलता......

सुनो! मेरे सपनों में मुस्कराने वाले, अब आन मिलो। मैं कुछ दिन यहीं पर रहूँगी। और कोई है भी नहीं। मेरे चाचा लेने आएँगे तो जाऊँगी। वह सरकारी नौकर हैं, इतनी जल्दी नहीं आ सकेंगे, क्योंकि उन्हें जायदाद के सम्बन्ध में कुछ बन्दोबस्त करने होंगे, इसलिए.....आओ, देर करना उचित नहीं।

मेरा हृदय, मेरी आँखें, मेरी आकांक्षाएँ सब आप की राह में बिछी हुई हैं।

उदास—

"उमा"

पत्र पढ़ कर सुरेश वहीं पर स्तब्ध सा बैठा रह गया। पिछले कुछ दिनों से परिस्थितियों ने जो करवट ली थी उससे सुरेश की दुनिया में एक क्रांति सी मच गई थी। वह उड़ कर उमा के पास पहुँच जाना चाहता था, लेकिन यह कैसे सम्भव था.....असम्भव, बिलकुल असम्भव।

दिन भर वह विचित्र मानसिक उलझनों में फँसा रहा। कुछ सूझ नहीं रहा था। उसे फिर श्रीमती सक्सेना के सहारे की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

पल पल गिनकर दिन काटा। रात हुई तो वह दुकान बन्द करके श्रीमती सक्सेना के बंगले पहुँचा। उस समय श्री सक्सेना भी मौजूद थे। सुरेश ने उन्हें नमस्ते किया तो श्रीमती सक्सेना ने कहा—"ये मेरे साथ यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे। सिविल लाइन्स में मशहूर दुकान 'माडर्न

मर्चेन्ट्स' इन्हीं की है। मैंने कुछ चीज़ों के बारे में जानने के लिये इन्हें बुलवाया है।"

श्री सक्सेना जल्दी में थे। "गुड, वेरी गुड" कहते हुए चलते बने।

दूसरे ही दिन सुरेश के आगमन से श्रीमती सक्सेना समझ गईं कि ज़रूर कोई असाधारण बात है। सुरेश ने सारी कहानी कह सुनाई और बताया कि मेरा जाना असम्भव है।

"क्यों?"

"वही, भाई साहब टाँग अड़ाएँगे।"

"क्या वे इतना दबाव डाल सकते हैं आप पर?

"उनका हिसाब सीधा सादा है। वे रुपया देने से इनकार कर देंगे और फिर हफ़्तों ताने देंगे।"

यह सुन श्रीमती सक्सेना बेचैनी से इधर उधर टहलने लगीं। सहसा रुकीं, फिर बोलीं—"अच्छा, अगर आपका कोई पुराना दोस्त आपको अपनी शादी पर मसूरी बुलाए तो? यानी बहुत मजबूर करे तो....?"

सुरेश तनिक रुका फिर बोला—"हाँ, फिर कुछ उपाय हो सकता है।"

"गुड?" श्रीमती सक्सेना ने मुट्ठी पर हाथ मार कर कहा—"मैं उमा को अभी चिट्ठी लिखे देती हूँ कि वह वापसी डाक से आपके फ़रज़ी दोस्त की तरफ़ से आपको एक जोरदार ख़त लिखे।"

सात

जब दिले नाशाद ने फरियाद की,
आँख भर आई मेरे सैयाद की !

दोपहर का समय था। सुरेश अपने प्रिय कोने में चपचाप कुरसी पर उठंगा सा अपने भाई की ओर देख रहा था जो उस समय बहुत प्रसन्न दीख रहा था। वह चार पांच पेग चढ़ा चुका था और उस समय पूरी तरंग में था। नौकर से हँसी मजाक हो रहा था। नौकर न जाने किस बात के जवाब में कह रहा था—"अरे साहब, उस मुटकी की बात छोड़िये, उस से तो वह ऐंग्लो इंडियन, लड़की अच्छी है।"

"अबे साले ऐंग्लो इन्डियन के बच्चे! जो बात मेम साहब में है वह तेरी ऐंग्लो इंडियन में कहाँ है। क्या कचौड़ी से गाल हैं। ऐसे गुलाबी कि चुटकी लेने से खून निकल आये।"

"पर वह मोटी जो है।"

"अबे, मोटी है तो क्या, तेरे कंधे पर सवार होगी क्या....।"

सुरेश ने देखा कि भाई का मूड आज अधिक अच्छा है तो कुछ सोच कर वह कोने से उठा और काउन्टर की ओर बढ़ा।

उसे आते देख बड़े भाई ने नौकर को आँखों, अंगुली और होंठों के बड़े स्पष्ट संकेत से चुप रहने की चेतावनी दी, मानो छोटे भाई के सामने इस प्रकार की बातें करना उचित नहीं, यद्यपि वे इतने जोर जोर

से बातें कर रहे थे कि सारी दुकान गूंज रही थी।

"भैया !"

जान पड़ता था कि बड़े भाई को छोटे भाई की यह विनम्रता बहुत पसन्द आई। बुजुर्गाना ढंग से उसने अपने सिर को काठ की पुतली के समान हिलाकर कहा—"कहो कहो।"

"भैया, बात यह है कि......।"

"कहो, हाँ हाँ....बेधड़क कहो।"

"जी, बात यह है असल में कि मेरे एक दोस्त की शादी है। उसने मुझे बुलाया है। मैंने उसे जवाब दे दिया है कि भाई साहब को दुकान में अकेले काम करना पड़ेगा। लेकिन वह बहुत ज़ोर देता है। मेरी उसकी बड़ी दोस्ती थी। हम कई वर्ष तक साथ साथ पढ़े हैं......।"

"शादी कहाँ है ?"

"मसूरी में !"

"अच्छा तो यों कहो कि शादी के बहाने से मसूरी की सैर करना चाहते हो.....हम बड़े घाघ हैं।"

"नहीं भैया, मैं सच कहता हूँ।"

"सच कहता हूँ..हूँ..लाओ देखूँ कौन से पत्र लिखे हैं उसने ?"

सुरेश को इसका कोई उत्तर न सूझा। उसने झूठ मूट अपनी पुस्तकों के पन्ने उलटे, फिर आकर बोला—"भैया, पत्र शायद घर पर रह गये हैं ?"

"बेटा, हम बड़े घाघ हैं....क्या समझे ?"

"लेकिन मैं......।"

"पहले बताओ, क्या समझे ?"

"आप बड़े घाघ हैं।"

"हाँ.....जाओ बैठो.....कविता पढ़ो.....ऐसी बातें नहीं सोचा करते।"

सुरेश वापस आकर बैठ गया। उसे मन में स्वीकार करना पड़ा कि उसका भाई सचमुच बड़ा घाघ है। कितनी आसानी से उसने उसे टाल दिया।

जब डाकिया शाम को डाक लेकर आया तो सुरेश के सौभाग्य से उसके फरज़ी दोस्त की चिट्ठी भी उसमें मौजूद थी। वह उछल पड़ा और तुरन्त भाई के पास जाकर बोला—"देखिये भैया! आप मेरी बात का विश्वास नहीं करते। लीजिये, यह रही एक और चिट्ठी।"

"अच्छा, तो पढ़कर सुनाओ।"

"लिखा है—

"मेरे प्यारे दोस्त!

मैंने तुमको कई पत्र लिखे लेकिन तुमने कभी कोई उत्तर न दिया। क्या बात है? यदि किसी बात पर नाराज़ हो तो माफ करना। और फिर अब तो मौका ही ऐसा है कि पिछली किसी भूल के लिये तुम्हारा नाराज़ होना उचित नहीं क्योंकि अब तो तुमको भाभी देखने को मिलेगी।

भई देखो, टालमटोल से काम नहीं चलेगा! जैसे भी बन बड़े तुरन्त आओ। पिता जी और माता जी भी तुमको याद करते हैं। यदि तुम न आये तो हम सभों को बड़ा दुःख होगा।"

हो सके तो अपने बड़े भाई साहब को भी लेते आना। उनसे मेरा नमस्कार कहना और यह पत्र दिखला देना।

देखो एक बार फिर लिखता हूँ कि अवश्य आओ और शीघ्र आओ।

तुम्हारा—
नरेन्द्र"

भैया अपने बारे में सुनकर प्रसन्न हुए और फिर माथे पर गम्भीरता से बल डाल कर बोले—"अच्छा, तो मुझे भी बुलाया है?"

सुरेश के पाँव तले से धरती खसकने लगी। भैया तनिक रुके फिर सिर हिला कर बोले—"नहीं, मेरा जाना असम्भव है। भई तुम उनसे हमारी ओर से हाथ जोड़ कर क्षमा माँग लेना।"

सुरेश ने प्रसन्न होकर कहा—"बहुत अच्छा,-तो आज रात की गाड़ी से चल दूँ क्या?"

सुरेश सोच रहा था कि वह जल्दी से जल्दी चल दे तो अच्छा है, कहीं उसका भाई फिर न पलट जाय।

"आज नहीं....बरात कब जायगी?"

सुरेश ने तनिक सोचकर उत्तर दिया—"नरसों।"

"नरसों!.....तो ठीक है। कल चलोगे तो एक दिन पहले पहुँच जाओगे।"

"ठीक है, जो आपकी आज्ञा।" सुरेश ने उस समय मिसकीन बने रहने में ही कुशल समझी।

रात को वह फिर श्रीमती सक्सेना को सब हाल बतलाने गया।

दूसरे दिन उसने तैयारी शुरू कर दी। भाई ने पूछा—"तो फिर क्या ज़रूर जाओगे?"

"हाँ भैया! अब तो आपकी आज्ञा मिल जाने पर मैंने उनको पत्र भी लिख दिया है।"

इस पर भाई चुप हो रहा। परन्तु जब तक गाड़ी में सवार न हो लिया, सुरेश ने इतमीनान की साँस नहीं ली।

सवेरे उसने अपने आपको हरिद्वार में पाया। गाड़ी चलने में काफ़ी देर थी। धीरे धीरे अंधकार छँट रहा था और फिर सूर्योदय से सारा आकाश जगमगा उठा। वहाँ की अपेक्षाकृत ठंडी हवा ने उसके दिमाग़ पर बड़ा सुखद प्रभाव डाला और उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो वह किसी नई दुनिया में आ निकला हो।

देहरादून टर्मिनस से वह मसूरी की बिलकुल जड़ में स्थित राजपूर क़स्बे

में जा उतरा। वहाँ से कुली से सामान उठवा कर वह पैदल आगे रवाना हो गया।

जैसे जैसे वह ऊपर चढ़ता जा रहा था, उसकी तबिअत में अजीब तरह की ताज़गी और स्फूर्ति उत्पन्न होती जा रही थी। वह कुछ कुछ दूर के बाद पीछे घूम कर देखता तो उसे ऐसा अनुभव होता मानो वह जीवन का सारा मैल पीछे छोड़ता जा रहा है। उसकी इच्छा होने लगी कि काश, अब वह यहीं रह जाय। उसे वापस न जाना पड़े।

धीरे धीरे चलता हुआ वह दो बजे के क़रीब मसूरी में लँढोर बाज़ार तक जा पहुँचा। वहाँ वह धर्मशाला में ठहर गया। संयोग से उसे एक छोटा कमरा भी मिल गया।

यद्यपि उमा से मिलने के लिये उसका मन बुरी तरह व्याकुल हो रहा था, परन्तु उसने सोचा कि दिन डूबे उमा के पास जाना शायद उचित न हो, इसलिये अच्छा यही है कि रात में आराम करके दूसरे दिन सवेरे उठ जाय और 'शेव' स्नान इत्यादि के बाद इतमीनान के साथ वहाँ जाय।

उसने सोचा कि जल्दी में वह उमा के लिए कोई उपहार नहीं ला सका। अब वह भी खरीदना होगा।

शाम को बाज़ार गया तो एक मामूली सी मोतियों की माला खरीद ली।

उसने बाज़ार में घूमते-घूमते एक व्यक्ति से पूछा कि कैमल्स बैक रोड किधर है तो उसने बड़े सरल और आकर्षक ढंग से बाज़ू उठाया और हाथ के इशारे से बताया कि वह सड़क वहाँ से बहुत दूर है।

उसके हाथ के इशारे का पीछा करती हुई सुरेश की नज़रें पहाड़ों की ढलवानों में खोकर रह गईं। उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो उमा कोई परी हो जो पहाड़ों की सुन्दरता में खोई अपने प्रेमी के आने की प्रतीक्षा कर रही हो।

आठ

तुम मेरे दुनिया मेरी, उकबा मेरी,
अब कमी मुझको भला किस बात की !

उस रात की नींद व्याकुलता से भरी किन्तु प्रियतमा के निकट पहुँच जाने की प्रसन्नता से पूर्ण नींद थी।

सूर्य का प्रकाश फैलने से बहुत पहले ही सुरेश की आँख खुल गई और वह कमरे से बाहर के अपरिचित वातावरण की अपरिचित आवाज़ें सुनने लगा। यह दुनिया उसकी दुनिया से कितनी भिन्न थी...लेटे लेटे उसने उमा से प्रथम मिलन की कई ढंगों से कल्पना की। हर कल्पना अपनी जगह पर सुहावनी और अनोखी थी।.....वह आनन्द तथा उल्लास की रूपहली नदी में हौले हौले बहता रहा.... यहाँ तक कि बाहर की आवाज़ों से पता चला कि सुबह हो गई है।

नहा धोकर उसने नाश्ता किया। घड़ी के तसमे को सावधानी से बाँधा, पतलून की 'क्रीज़' को जाँचा और फिर सस्ते सफ़ेद मोतियों की माला भीतर की जेब में सावधानी से रख, बग़ल में पहाड़ी लकड़ी की सुबुक सी छड़ी दबा वह प्रियतमा के घर की ओर चल पड़ा।

लंढोर बाज़ार खत्म होने के बाद दाहिने हाथ को पर्वत श्रेणियाँ दिखाई पड़ने लगीं। खड्डों की गहराइयों में धुंध छाई हुई थी लेकिन आकाश बिलकुल स्वच्छ था। धूप तथा पहाड़ों की परछाइयाँ, बड़ा सुन्दर

दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं।

उतराई पर वह हलकी फुलकी गेंद की भाँति लुढ़कता हुआ सा चला गया। कुलड़ी बाज़ार में से होकर रिंक थियेटर की बग़ल से होता हुआ वह कैमल्स बैक रोड पर पहुँचा। वहाँ उसने एक पढ़े लिखे आदमी से पूछा—"क्या आप बता सकते हैं कि न्यू लैंड कहाँ पर है?

"कह नहीं सकता।" उस शिक्षित व्यक्ति ने कहा—"मेरे विचार में यहाँ पास में नहीं है। अभी तो यह सड़क शुरू हुई है। आगे बढ़ते जाइये, सड़क बहुत लम्बी है.......।"

सुरेश ने मन में कहा—आखिर यह सड़क कितनी लम्बी हो सकती है। यदि उसे उमा से मिलने के लिये संसार के दूसरे कोने तक भी चल कर जाना पड़े तो वह जा सकता है।

यहाँ का वायुमंडल अधिक ठंडा, तथा शान्त था। यह तो देवी देवताओं का निवास स्थान मालूम होता था।

चलते चलते पौन घन्टा बीत गया। अब तो उसे ऐसा महसूस होने लगा कि न उसके पीछे कोई दुनिया रह गई है और न आगे उसकी जानी पहिचानी दुनिया आयेगी। इस प्रकार अपने विचारों में लीन वह धीरे धीरे चला जा रहा था कि घने वृक्षों के झुंड के नीचे उसे एक पुराना लकड़ी का तख्ता दिखाई पड़ा जिस पर लिखे अक्षर मद्धिम पड़ गये थे किन्तु उसे पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

न्यू लैंड!

अर्थात नई दुनिया!

एक चौड़ कच्चा रास्ता पक्की सड़क से फट कर नीचे की ओर ऊँचे और घने वृक्षों को चीरता हुआ चला गया था। उसने पक्की सड़क की पथरीली सतह से हट कर जब कच्चे रास्ते की मुलायम धरती पर पाँव रक्खा तो उसे ऐसा महसूस हुआ मानो उसने किसी के नर्म, कोमल हृदय पर पाँव धर दिया है।

उसकी चाल मंद किन्तु हृदय की धड़कन तीव्र हो उठी।

आगे दाएँ बाएँ अच्छे खासे बड़े बड़े घर थे जिन्हें क्वार्टर तो नहीं कहा जा सकता था। बड़े मकानों की इस श्रेणी से गुज़र कर जब वह आगे पहुँचा तो देखा कि और आगे नीचे की ओर ईंटों की बनी हुई एक दो मंज़िला इमारत खड़ी है। उसके मन ने गवाही दी कि अवश्य ही यही वे क्वार्टर हैं।

अब एक बल खाती हुई पगडंडी ने उस चौड़े मार्ग का स्थान ले लिया था। वह सँभल सँभल कर और आगे बढ़ा। यहां तक कि इमारत की ऊपर वाली मंजिल के बराबर पहुँच कर वह उसके सँकरे बरामदे में घुस गया। एक दो दरवाजों के नम्बर पढ़ने पर उसने महसूस किया कि १४ नं० निचले बरामदे में होगा।

लौट कर वह पगडंडी से और नीचे उतरा।

वहाँ उसे इक्का दुक्का सफेद पोश बाबू दिखाई पड़े। कुछ गृहस्थ स्त्रियाँ बाहर बैठी बर्तन माँज या कपड़े धो रही थीं।

सँकरे बरामदे से होता हुआ, वह कमरों के नम्बर देखता आखिर तक जा पहुँचा। आखिरी कमरे का नम्बर १४ था।

दरवाज़ा बन्द था।

सुरेश के पाँव जैसे जमीन में गड़ गए हों और हाथ पाँव शिथिल पड़ गये हों। उसने दबी नज़रों से इधर उधर देखा, लेकिन कोई उसे खास तौर से न देख रहा था।

आखिर साहस से काम लेकर उसने दरवाजा खटखटाया।

कोई उत्तर न मिला।

उसने फिर द्वार खटखटाया।

किंचित विलम्ब के बाद भीतर से महीन स्वर सुनाई पड़ा—"कौन ?"

"मैं।" और फिर उसने खाँस कर गला साफ़ किया।

इसके बाद फिर खामोशी छा गई जो उसे बहुत लम्बी मालूम हुई। और एक बार तो उसके मन में आया कि वह उलटे पाँव लौट जाय।

इतने में भीतर से चटखनी सटकी.....और उसका हृदय मानो गले में आगया।

दरवाजा खुला—सामने उमा खड़ी थी।

दोनों के मुँह पर चुप्पी लगी थी। फिर उमा ने दरवाजा और अधिक खोल दिया.....और वह भीतर चला गया।

बहुत छोटा सा कमरा था। मुश्किल से दस वर्ग फ़ीट। एक ओर एक पलंग, दूसरी ओर कार्निस पर कुछ चमकते बर्तन! एक छोटा बिना गुलदस्ते का फूल दान। दो तीन बहुत पुराने ट्रंक ऊपर तले रक्खे हुए, और लट्ठे का झालरदार मेज पोश। एक कोने में पानी की मोरी। पिछली ओर को खुलती हुई एक खिड़की।

सुरेश को वहाँ पहुँच कर बड़ा विचित्र सा अनुभव हुआ। वह उमा की झुकी झुकी आँखों की ओर अधिक देर तक नहीं देख सका बल्कि वह जान बूझकर इधर उधर की चीजें देखने में लगा था और उसकी समझ में भी न आ रहा था कि उसे क्या कहना और क्या करना चाहिये।

भागने का कोई मार्ग न पाकर वह खिड़की की ओर गया। खिड़की खुली थी किन्तु उसके आगे बड़े बड़े पत्थरों का बाँध था जो ऊपर की मंजिल तक चला गया था। झाँक कर देखने से आकाश दिखाई पड़ता था और बाँध के ऊपर कुछ कुछ दूर पर रंगीन तितलियों की भाँति कुछ कोमल फूल लहलहा रहे थे। गाँठदार लम्बी लम्बी हरी घास बांध के काई लगे पत्थरों से नीचे लटक रही थी।

वह जानता था कि उमा परे पलंग के पाये से टेक लगाये खड़ी है। उसने मौन भंग करने के लिये धीरे से कहा—"यह अच्छी जगह है। शान्त वृक्ष, नीरव वायुमंडल...।"

....और फिर उसे अपनी पीठ पर किसी कोमल चीज़ के स्पर्श का अनुभव हुआ।

उसका सँभलता हुआ दिल फिर ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगा। उसने शरीर को हिलाये बिना केवल गर्दन घुमाई और कनखियों से पीछे की ओर देखा। उमा आँखें मूँदे अपना नर्म गाल उसकी पीठ पर टिकाये खड़ी थी।

उसने धीरे धीरे शरीर को घुमाया और उमा के सामने खड़ा हो गया।

उमा की पलकें उठीं। उसकी आँखें क्षण भर के लिये तेज़ कटार की तरह चमक गईं और फिर उसने आँखें मूँद लीं और सिर उसकी छाती पर रखकर बड़ी कमज़ोर, मद्धिम किन्तु मधुर आवाज़ में कहा—"आप आगये ?"

वर्षों से वह दूर से उमा को देखता रहा था लेकिन कई महीने के अन्तर के बाद आज उसकी शक्ल दिखाई दी तो कितने क़रीब से ?

बाहर ठंडी हवा साँय साँय करती हुई चल रही थी।

सुरेश ने उमा की दुधिया मांग में से फ़ौवारे की भाँति निकलते हुए उसके घने केशों की घटाओं को देखा। उसकी पतली खिंची हुई भवों के नीचे उसके सीप के से पपोटे और पपोटों के नीचे उसके पीलाहट लिये हुए गेहुएँ गालों के उभार और उभारों के नीचे उसके तरशे तराशे होंठ-- जो उस समय अधखुले थे।

"उमा !" यह आवाज़ उन दोनों के कानों को भली लगी, "उमा ! क्या अभी तुम्हें मेरे आने का विश्वास नहीं हुआ ?"

जवाब में उमा और भी सट कर उसके साथ लग गई। सुरेश ने एक दम उसके होंठों पर होंठ रख दिये जो उसे बर्फ़ की तरह ठंडे महसूस हुए।

नौ

नींद उसकी है, दिमाग़ उसका है, रातें उसकी हैं
तेरी ज़ुल्फें जिसके बाज़ू पर परीशां हो गईं !

पहली मुलाक़ात के बाद दूसरे दिन शाम का प्रोग्राम यह बनाया गया कि किसी रेस्तरां में चाय पी जाय।

मसूरी में सुरेश की दूसरी सुबह उसके जीवन की शायद सबसे सुखद सुबह थी। प्यार का एक सफल दिन बीत चुका था और प्यार भरी बाक़ी ज़िन्दगी उसकी स्वप्निल दृष्टि के सामने थीं।

बिस्तर से उठकर वह धर्मशाला के आंगन में फ़ौलादी जंगले पर कोहनियां टेककर खड़ा हो गया। सामने हरे-भरे पहाड़ों की श्रेणी दूर तक चली गई थी। वह एक स्वप्न की दुनिया दिखायी पड़ती थी।

कल की मुलाक़ात का जो आनन्द उसे इस समय आ रहा था वह मुलाक़ात के समय भी महसूस न हुआ था। शायद इसलिए कि उस समय भावनाओं की उतनी प्रबलता थी कि उसका मस्तिष्क उनका साथ न दे सका। लेकिन आज उसे एक-एक बात याद आ रही थी और वह बीती हुई मुलाक़ात के एक-एक क्षण से लिपट-लिपट गया. . .यहाँ तक कि सूरज खूब चढ़ आया, तब उसने नहाने-धोने की ठानी।

सारा दिन काटना कठिन हो गया। आख़िर जब दो बज गए तब उसने तैयारी शुरू कर दी।

प्रियतमा से मिलने की तैयारी से अधिक आनन्द प्रद दूसरा काम क्या हो सकता है।

ठीक चार बजे वह कुलड़ी में रिंक के निकट जा पहुँचा। यहीं पर मिलने का प्रोग्राम बनाया गया। वह नियत समय से कुछ मिनट पहले ही पहुँच गया था लेकिन ठीक चार बजे उमा की सूरत दिखायी दी वह सादे लिबास में भी ग़ज़ब की सुन्दर दीख रही थी। सुरेश ने बढ़कर उमा का स्वागत किया और उसकी उङ्गलियों ने नरमी से चोली के नीचे उमा की कमर की त्वचा को छुआ तो दोनों के शरीर काँप गए।

उस भरी बाज़ार में उनको जाननेवाला कोई नहीं था। लोगों की छिछलती दृष्टि में उनकी हैसियत अधिक से अधिक एक युगल जोड़े की सी थी जिनकी उङ्गलियाँ कभी बेताब हो ही जाती हैं।

एक दूसरे को देखकर दोनों निहाल हो गए और कन्धे से कन्धा भिड़ाए, हाथ में हाथ दिए वे कुलड़ी की चढ़ाई चढ़ने लगे।

"कहिये, कल शाम कैसी बीती?" उमा ने मुस्करा कर पूछा।

"आपकी याद में।" जवाब मिला। इस पर उमा लजाकर लचक गई और वह सुरेश के साथ और सटकर चलने लगी।

"अच्छा, तो आपके पड़ोस वाले मेरे बारे में पूछते होंगे।"

"जी, खास तौर से तो किसी ने नहीं पूछा।"

"क्यों?"

"मैंने पहले ही बता दिया था कि......मेरे मामा के लड़के मसूरी आने वाले हैं। मुझसे भी मिलने के लिये आयेंगे।"

"अच्छा... ....खूब! तो इसके माने यह हैं कि आपने मैदान पहले ही साफ़ कर रखा था।"

"जी।" उमा फिर शर्मा गई।

"अच्छा, तो यह बतलाइए कि चाय कहाँ पर पी जाय?"

"जहां आपका जी चाहे।"

"मेरा जी चाहता है कि ऐसी जगह हो जहाँ खुले पहाड़ों का दृश्य भी सामने रहे और हम-दोनों अलग-अलग बैठ भी सकें। जहाँ कोई ख्वाहमख्वाह घूर-घूरकर न देखे.....और यह तो आप जानती ही हैं कि मेरे लिए यह जगह बिलकुल नई है ?"

"जी, समझ गई..... तो रूबी चलते हैं। वह, बड़ा मंहगा रेस्तराँ है इसलिए योरोपियन या मालदार हिन्दुस्तानी ही वहाँ जाते हैं। लेकिन इतना फ़ायदा है कि आप जो-जो कुछ चाहते हैं, वहाँ मिल जायगा।"

"बहुत अच्छा, मुझे मंज़ूर है। कहिए तो रिक्शा कर लें ?"

"जी नहीं, अब दूर नहीं है। अगले ही मोड़ पर तो है।"

"गुड !"

उस समय कुलड़ी में खूब चहल-पहल हो रही थी। अंगरेज़ी और हिन्दुस्तानी प्रतिष्ठित महिलाओं के रंग-बिरंगे वस्त्रों ने जंगल में मंगल का समाँ बाँध रखा था।

रूबी रेस्तरां का एक बाज़ू पहाड़ों की ओर बढ़ा हुआ था। वहाँ सुरेश को सचमुच एक मनचाहा कोना मिल गया।

चाय का आर्डर देकर उसने उमा के मलाई से नर्म हाथ अपने हाथों में ले लिए और उसकी आंखों में आंखें डालकर बोला—"जानती हैं आप ?"

"क्या ?" उमा ने आँखें झुकाकर पूछा।

"मैं कितना खुश हूँ ?"

इस पर उमा ने होंठ दांतों के नीचे दबाकर धीरे-धीरे उसे दाँतों की गिरफ्त से निकालना शुरू किया। उसने ज़मीन पर गड़ी हुई नज़रों को हटाकर क्षण भर को एक तेज निगाह अपने प्रीतम पर डाली और फिर उसका सौन्दर्य और भी आकर्षक हो उठा।

"उमा ! मेरा जीवन दो हिस्सों में बंट गया है। जानती हो वे कौन

से हिस्से हैं ?"

उमा ने खामोशी से सिर हिलाकर इनकार किया।

सुरेश ने प्यार भरे स्वर में कहा—"मेरा जीवन दो हिस्सों में बँट गया है। एक उमा के आने से पहले, दूसरा उमा के आने के बाद।"

इस पर उमा के भावुक चेहरे पर विभिन्न प्रकार की भावनाओं की इतनी परछाइयां आईं और चली गईं कि उनकी न तो गिनती हो सकती थी और न उनका विश्लेषण हो सकता था।

सुरेश ने आगे झुककर पूछा—"लेकिन उमा, क्या तुम्हारा जीवन भी मेरी तरह दो हिस्सों में बँट गया है ?"

उमा ने आंखें झुकाये-झुकाये सिर हिला कर इनकार किया और फिर तनिक रुककर बोली—"आपसे मिलने से पहले मैंने कभी यह महसूस ही नहीं किया कि मैं भी जीवित हूँ।"

"शरीर ! तुमने पहले तो मुझे डरा ही दिया था !"

इतने में चाय आ गई।

वे धीरे-धीरे चाय पीते रहे और प्रेम के रस और रंग में डूबी हुई बातें करते रहे। यहाँ तक कि रात का अन्धकार वायुमण्डल पर छाने लगा। तारे झिलमिलाने लगे। बातचीत के दौरान में सुरेश उमा के बहुत निकट आ गया। यहाँ तक कि उमा के केश उसके चेहरे को छूने लगे।

उमा ने इधर उधर निगाह दौड़ाकर रहा—"कोई देख लेगा।"

"लेकिन यह गुस्ताखियां मैं नहीं कर रहा हूँ। इसका जिम्मेदार मेरा दिल है।"

"यहां नहीं।"

इस पर सुरेश ने उसकी आंखों में आंखें डालकर देखा। नज़रें मिलते ही वह शर्मा गई और फिर आंखें झुकाकर अपने कपड़ों की सिलवटें दूर करने लगी।

चाय का बिल चुकाकर वे दोनों बाहर निकले तो उमा ने कहा—

"आइए, उस सड़क से होकर चलें। रास्ते में एक कच्ची पगडण्डी इसमें से निकलकर नीचे को जाती है। नीचे कुछ हरे-भरे खेत हैं। वह बड़ा सुन्दर और शान्त स्थान है। हमारे कार्टर भी वहां से पास हैं। कुछ देर वहां बैठेंगे फिर मैं कार्टर चली जाऊँगी और आप उसी पगडन्डी से लौट आइयेगा।"

सुरेश ने उमा का हाथ दबाते हुए जवाब दिया—"मंजूर।"

रात के वक्त समाँ और सुहावना हो गया। लगभग एक मील तक वे बातें करते चले गये। फिर उमा रुक गई।

"क्यों?"

"यही है वह पगडन्डी।"

"गुड......तो आओ चलें।"

"आप चलिए, मैं आती हूँ।"

"यानी....आप मेरे साथ नहीं चलेंगी?"

यह कहकर उसने उमा का हाथ खींचा।

उमा ने अपनी कोमल उंगली से सड़क के किनारे एक छोटी सी सफ़ेद कोठरी की ओर इशारा किया जिसके बाहर लिखा था:—केवल महिलाओं के लिए।

"ओह! यह बात है।" वह हँस पड़ा।

इस पर उमा को इतनी हंसी आई कि उसने रुमाल मुंह में ठूंस लिया।

सुरेश पगडन्डी से नीचे उतर कर एक खेत के किनारे ऊँची मेंड़ पर बैठ गया। वास्तव में बहुत सुन्दर और सुहावना स्थान था।

इतने में उसे उमा पगडण्डी पर मन्द गति के साथ दौड़ती हुई आती दिखाई पड़ी। चुंदरी हवा में उड़ रही थी। वह ऐसी दीख रही थी मानो वह कोई अप्सरा हो जो आकाश से उतर रही हो। आते ही वह बेदम होकर उसकी गोद में गिर पड़ी।

दस

दम लिया था न क़यामत ने हनोज़
कि फिर तेरा वक़्ते-सफ़र याद आया।

मसूरी में रहते हुए सुरेश को पाँचवाँ दिन था। आज उसे वापस जाना था। इस विचार से उसका मन बोझिल हो रहा था। लेकिन बिना वापस हुए कोई उपाय नहीं था। उसका एक कारण तो यह था कि वह अपने बड़े भाई से अधिक दिनों की आज्ञा लेकर नहीं आया था, और दूसरे अब उमा के चाचा भी वहाँ आया ही चाहते थे।

उमा से मुलाकात अधिकतर शाम के समय कुलड़ी में होती थी जिसमें कि पड़ोसियों को ख्वाहमख्वाह संदेह न हो। हां, एक शाम को वह अवश्य क्वार्टर में चला गया था। रात के ग्यारह बजे तक उन दोनों में बात चीत होती रही। आज आखिरी दिन के बारे में उमा ने राय दी कि पैदल जाने के बजाय वह शाम को बस पर जाय जिसमें कि वे सारे दिन अधिक से अधिक समय एक साथ बिता सकें। उसे ग्यारह बजे तक 'सनी व्यू' बस के अड्डे पर पहुँचना था। वहाँ पर सामान बुक कराकर वे दोनों सैर करेंगे, खाना खायेंगे और फिर शाम को आखिरी बस में वह सवार हो जायगा।

एक ट्रंक और एक बिस्तर के अतिरिक्त उसके पास कोई सामान नहीं था जो उसने सवेरे ही तैयार कर लिया था। अभी उसके जाने में

काफी समय बाकी था। वह कमरे के बाहर निकलकर आंगन में टहलने लगा। उसका मन उदास था। पिछले कुछ दिन जिस आनन्द के साथ बीते थे। उसका मज़ा अब किरकिरा हो रहा था।

आंगन में स्त्रियां एक ओर नहा रही थीं या कपड़े धो रही थीं। कुछ नींद के रसिया अभी अभी सो कर उठे थे और मुँह में दातून ठूंसे चबूतरे पर उकड़ूँ बैठे थे। जंगले पर खड़े-खड़े एक बाबू से यों ही बात चीत शुरू हो गई। वह गढ़वाल का रहने वाला था, मसूरी में किसी दफ्तर में क्लर्क था। उससे बात चीत करना सुरेश को अजीब सा लग रहा था। उसकी बोल चाल का लहजा बिलकुल अलग, उसकी भाषा भिन्न और भाव-भंगिमा सर्वथा अपरचित। सुरेश को क्षण भर के लिए फिर ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह एक नई दुनिया में पहुँच गया है। लेकिन वापसी का ख्याल, अपनी दूकान और भाई के क्रूर रूप की कल्पना से उसकी आत्मा पर काले बादल से छाने लगते।

बातों-बातों में उस व्यक्ति ने पूछा—"क्यों जी, आपका मेम साहब कहाँ रहता है?"

"मेम साहब?" सुरेश ने अचरज से पूछा।

"जी, आप रोज शाम को उसके साथ कुलड़ी में घूमता, रात को अकेले यहाँ आ जाता।"

"ओह!" अब सुरेश को कोई बात सूझ नहीं रही थी।

"आयाका मतलब है हमारा मेम साहब. . ."

सीधे-साधे पहाड़ी बाबू ने हँसते हुए पूछा—"क्या खचपच हो गया है?"

"हाँ।" सुरेश ने ज़ोर से सिर हिलाकर जवाब दिया—"जी हाँ खचपच हो गया कुछ। वह गुस्सा होकर अपनी माँ के साथ यहाँ चला आया।"

". . .और आप भी पीछे-पीछे हियां आ गया? ओहो, बहुत मजा

आया।" वह ताली बजाकर हंसा।

"अरे भाई साहब, भगवान से प्रार्थना करो, हमें हमारा मेम साहब मिल जाय।"

पहाड़ी बाबू ने दोनों हाथ उठा कर कहा—"हम प्रार्थना किया, पर बाबू, वह तो आपको बहुत प्रेम करता दिखता..."

"हाँ, हाँ, वह बहुत प्रेम करता है..."

सुरेश ने सिग्रेट पेश किया तो पहाड़ी बाबू बहुत खुश हुआ।

फिर सुरेश कमरे में आकर चारपाई पर लेट गया। पहाड़ी बाबू की बातचीत का उसके मन पर सुखद प्रभाव पड़ा था। इस विचार से कि वे दोनों साथ-साथ चलते पति-पत्नी लगते हैं, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके दिमाग़ में पहले दिन की याद ताज़ा हो गई, जब साढ़े बारह बजे के क़रीब वह विदा होने लगा तब उमा ने कहा—"अब आपको भोजन कराये बिना नहीं जाने दूँगी।"

"नहीं नहीं.. अब भोजन बनाने का कष्ट न कीजिए। मैं रास्ते में किसी होटल में भोजन कर लूंगा।"

इस पर उमा ने दोनों हाथ उसके कन्धे पर रख दिए और उसकी आँखों में यों आँखें डालीं कि वह चारपाई से उठ ही न सका और बोला—'देखिए, आपकी आँखें तो पहले ही से कयामत ढा रही हैं। अब इस तरह घूरकर मत देखिये मुझे....."

सुरेश की यह बात सुनकर उमा ने लजाकर मुँह छिपा लिया....फिर उसने अपनी नर्म-नर्म कोमल उँगलियों से आलुओं के बहुत छोटे-छोटे क़तले काटने शुरू किये जिन्हें देखकर सुरेश को आश्चर्य हुआ तो उमा बोली—"ये क़तले बहुत जल्दी गल जायँगे। अभी दस-पन्द्रह मिनट के अन्दर-अन्दर आपको भोजन परोस दूँगी।" उसके बाद उसने फुर्ती से स्टोव जलाया, प्याज़ काटी और कढ़ाई में घी डालकर आलुओं के क़तलों को भूना और थोड़ा पानी छोड़ दिया। इधर दस मिनट के लिये उसने

आलुओं को पकने दिया और इधर आटा गूंध डाला और सचमुच पन्द्रह मिनट के अन्दर-अन्दर सुरेश के सामने भोजन की थाली आ गई। सुरेश को जितना मज़ा उस दिन के भोजन में आया, पहले जिन्दगी भर में कभी न आया था। उस दिन उसे ऐसा अनुभव हुआ मानो उमा से उसका विवाह हो चुका हो। वह दफ्तर जाने को हो और उसकी पत्नी उमा उसके लिये बैठी भोजन बना रही हो.... ...वह जल्द से जल्द उस दिन को निकट लाना चाहता था।

सहसा उसने घड़ी की ओर देखा। समय हो चुका था। बिस्तर बंधा रखा था। ट्रंक में ताला लगाकर उसने कुली को आवाज़ दी।

सनी व्यू पहुँचा तो वहाँ उमा पहले से खड़ी थी।

"माफ़ कीजिये, मुझे ज़रा देर हो गई।"

"कोई हर्ज नहीं, आप देर से नहीं आए, मैं ही वक्त से पहले पहुंच गई थी।"

"वक्त से पहले.... ....क्यों?"

"कारण किसी दिलवाले से पूछिये।"

सुरेश झेंप गया।

सबसे पहले सामान बुक करा दिया गया। उमा ने कहा—"लीजिये, छुट्टी हुई। सामान तो अभी चला जायगा। अब रह गये आप.... ...."

"हाँ, तो हमें कब भेजियेगा?"

उमा ने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा—"हाय, कभी नहीं.... ....कभी नहीं।"

"थैंक्स। आइये, पहले एक कप चाय पीकर ताज़ा हो जायँ। खाने में अभी काफ़ी वक्त है। ओ० के०?"

उमा ने अपना हाथ उसके हाथ में देते हुए कहा—"ओ० के०।"

चाय के स्टाल के पास खड़े होकर उन्होंने चाय पी और कुछ गरी के बिस्कुट खाये।

चाय के बाद उन्होंने सचमुच अपने अन्दर ताज़गी का अनुभव किया

और हाथ में हाथ दिये किताब घर की ओर चल दिये क्योंकि खाना खाने का वहीं पर प्रोग्राम बना था।

रास्ते भर वे बातें करते रहे। किताब-घर तक की चढ़ाई की कठिनाई को उन्होंने तनिक भी महसूस नहीं किया।

खाना खाने के बाद फिर बातें ही बातें चलती रहीं।

वापस सनी व्यू पहुँचे तो विदाई की घड़ी निकट आने का अनुभव करके दोनों चुप हो गए।

सुरेश काफी देर तक चुपचाप उमा की ओर देखता रहा। फिर बोला—"उमा! पहले तुम वह ज्वाला थीं, जिसके भड़कते हुए शोलों में मैं अपने आपको भस्म कर डालना चाहता था लेकिन अब तुम वह आग हो जो मेरे शरीर की नस-नस में दौड़ रही है......अब मेरे प्रति जो तुम्हारा कर्तव्य है और तुम्हारे प्रति जो मेरा कर्तव्य है उसे हमें पहचान लेना चाहिये।"

उमा ने उसकी ओर स्वप्निल दृष्टि से देखते हुए जवाब दिया—"कुछ पहचानने की ज़रूरत नहीं। मुहब्बत अपना रास्ता स्वयं बनाती है।"

बस तैयार खड़ी थी।

सुरेश ने कहा—"थक गई होगी। वापसी में रिक्शा पर जाना।"

"अच्छा।"

"नहीं......कहीं तुम पैदल न चली जाना।" उसने तुरन्त रिक्शा बुलाया और पेशगी किराया देकर, कुलियों से कहा—"देखो,....इन मेम साहब को आराम से पहुँचा देना।"

'मेम साहब' शब्द सुनकर उमा के होठों पर मुस्कराहट खेलने लगी और आंखों में आंसू भी उमड़ आये।

बस चली तो पहले मोड़ तक दोनों की नज़रों का तार बंधा रहा फिर उस अभागे मोड़ ने दोनों को एक दूसरे की नज़र से नोचकर अलग कर डाला।

ग्यारह

जाने क्या सोचता हूँ, रुक-रुक कर
हर कदम पर सवाल सा कुछ है !

सन्ध्या का समय था। श्री सक्सेना और उनकी पत्नी बाहर लॉन पर बैठे थे। चाय आई तो श्री सक्सेना ने जल्दी से एक प्याला चाय पीकर रूमाल से होंठ साफ़ करते हुए कहा—"लो डार्लिंग! माफ़ करना, तुम्हारे साथ बैठकर चाय नहीं पी सका. . .आज जल्दी क्लब पहुँचना है।"

"क्या है वहाँ पर ?"

"भई आज फ़ाइनल रिहर्सल है. . ."

"इतवार को भी सारे दिन आप इसी तरह व्यस्त रहे। न खाना ढंग से खाया न चाय पी।"

"डार्लिंग! यह भी ग़नीमत समझो कि हम साथ-साथ मैटिनी देख आये।"

श्री सक्सेना कुछ भद्देपन के साथ मोटे अवश्य थे लेकिन उनका व्यक्तित्व आकर्षक था। वैसे भी काफ़ी फुर्तीले थे। तुरन्त उठे और क्लब को रवाना हो गये।

श्रीमती सक्सेना अकेली बैठी रह गईं।

चायदानी टीकोज़ी में ढँकी रखी थी और श्रीमती सक्सेना अपने विचारों में तल्लीन हाथ पर हाथ रखे बैठी थीं। इतने में आवाज़ आई—

"नमस्ते जी !"

उन्होंने घूमकर देखा तो सुरेश को खड़ा पाया। मुसकराकर बोलीं—"नमस्ते, नमस्ते ! आइये, आइये बैठिये।"

"कहिये, आज किन विचारों में खोई हुई हैं ?"

"कुछ नहीं, अभी-अभी वे क्लब गये हैं। मैं अकेली बैठी थी इसलिये चुप थी ! और फिर मेरी आदत यह है कि अगर कोई साथी न हो तो चाय पीने में कुछ मज़ा नहीं आता।"

"इसका मतलब यह है कि मैं बड़े अच्छे मौके पर पहुँच गया हूँ।"

"बेशक, बेशक। जब से आप मसूरी से आये हैं, आप से मुलाकात ही नहीं हुई। दूकान पर आपके भाई साहब के सामने तो कोई बात हो भी नहीं सकती।"

"ठीक है। लेकिन मैं एक रात दूकान बन्द करने के बाद आपके यहाँ आया था, तब आप यहाँ मौजूद नहीं थीं। नौकर ने बताया कि शायद सिनेमा देखने गयी हैं।"

"कब की बात है ? मैं तो प्रायः घर पर ही रहती हूँ।"

सुरेश ने कुछ सोचकर बताया—"चार पाँच दिन पहले की बात है।"

श्रीमती सक्सेना ने दिमाग़ पर ज़ोर डालकर कहा—"हो सकता है ''''''हमारे कुछ मेहमान आये हुए थे, उन्हीं के साथ चली गई थी। खैर, अब मसूरी की कहिये, कैसी बीती !"

"ख़ूब बीती।"

श्रीमती सक्सेना ने तनिक ध्यान से उसकी ओर देखा, मानो उसके मन का भेद जानने का प्रयास कर रही हों। फिर बोलीं—"अरे भई, ज़रा खुल कर बोलिये। बस, चाय पीने का मज़ा आ जाय।"

सुरेश ने मुस्कराकर सिर कुर्सी के तकिये से टेक दिया—"अब आप क्या पूछती हैं। आप कोई सवाल कीजिये तो जवाब दूँ।"

"अच्छा, तो यह बात है। आप से जिरह की जाय ?"

"मैं हर तरह से हाज़िर हूँ।"

"वह कैसे मिलीं ?"

"बहुत अच्छी तरह से मिलीं।"

"गले लगकर ?"

"क़रीब-क़रीब।"

"क़रीब-क़रीब से क्या मतलब ?"

"यह बात कैसे समझाऊँ ?"

"क्यों, खैरियत तो है ?"

"आप तो सचमुच जिरह कर रही हैं।"

"लेकिन आप की इजाज़त से।"

सुरेश हँस दिया और फिर बोला—"वह मुझसे बड़े प्रेम से मिलीं लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता था मानो वह मुझसे खिंच रही हों। यानी कुछ झिझक सी, मानो अभी हमारे प्रेम में कोई कसर बाक़ी हो।"

"अरे नहीं, यह आपने क्या बात कह दी। भई, लड़कियां बड़ी शर्मीली होती हैं। भला पहली मुलाक़ात में कैसे खुल सकती थी। वाह, अगर उसके दिल में आपके लिये इतना प्यार न होता तो पहली मुलाकात में वह इतना भी न खुल सकती।"

"आपकी बात बिलकुल ठीक हो सकती है। लेकिन मैंने तो सिर्फ़ अपने मन की एक शंका प्रकट की है। मुझे ऐसा महसूस होता था, जैसे इसमें कोई भेद छिपा हो, जिसे वह मुझ पर प्रकट न करना चाहती हों।"

"वाह, वाह! अच्छी क़द्र की आपने हमारी सहेली की। वह तो आप पर प्राण देती है और आप हैं कि उसके प्रेम पर शक कर रहे हैं।"

"मैंने यह तो नहीं कहा कि मुझे उनके प्रेम पर शक है बल्कि मैं यह कहना चाहता था कि मैंने ऐसा महसूस किया, मानो उनको मेरे प्रेम

पर पूरा-पूरा भरोसा या विश्वास नहीं है।"

"छोड़िये भी, आप बहुत भावुक मालूम होते हैं। शर्म और लज्जा तो एक लड़की के लिये स्वाभाविक चीज़ है।"

"हो सकता है आप ही का विचार ठीक हो।"

"हो सकता है क्या, मेरा ख्याल ठीक है ही। लीजिये, अब चाय पीजिये।"

सुरेश चुपचाप प्याले में चमचा हिलाने लगा। उस समय उसका सिर झुका हुआ था और बालों का एक बड़ा गुच्छा उसके माथे पर आ गिरा था।"

श्रीमती सक्सेना ने बात का रुख़ बदलते हुए पूछा—"और कहिये, आपके भाई साहब का क्या हाल है ?"

"वही, जो सदा रहता है।"

"मैंने जो बातें कही थीं, उनके बारे में कोई क़दम उठाया आपने ?"

"कौन सी बातें ?"

"भई वही, जो मैंने बँटवारे के लिये कहा था। अभी आप नौजवान हैं, इन बातों को अच्छी तरह नहीं समझते लेकिन आगे चलकर आपकी ज़िन्दगी पर इन सब सवालों और उनके हल का बहुत गहरा असर पड़ेगा।"

"जो बात आप कह रही हैं, मैं उसे अच्छी तरह समझता हूँ, लेकिन इस वक्त कुछ सूझ नहीं रहा है। न मुझे कार-बार का कुछ तजरबा है और न कानूनी दांव-पेच जानता हूँ। क्या करूँ, क्या न करूं।"

"यह सब ठीक है, लेकिन आप कोई दूध पीते बच्चे तो हैं नहीं। अगर हिम्मत करें तो सब कुछ ठीक हो सकता है।"

"ग़ौर कीजिये कि अगर मैं ऐसी कोई बात कहूँ और भाई साहब, जो पहले ही मुझसे खिंचे रहते हैं, और भी खिलाफ हो जायँ तब तो मैं न जाने किन-किन मुसीबतों में फस जाऊंगा।"

"सचमुच आप बच्चों की सी बातें करते हैं। भई पहले तो आप को यह मालूम होना चाहिये कि आपके पिता जी जायदाद, दूकान और नक़द रुपये के बारे में ज़रूर कोई वसीयत कर गये होंगे......"

"जी हां।"

"तो आपने उसे पढ़ा ?"

"यों ही सरसरी नज़र से देखा था।"

"बहुत खूब, सरसरी नज़र से देखा था। भई मैं पूछती हूँ कि जब आप की शादी हो जायगी तो आप क्या करेंगे! इधर आपके भाई साहब कोई तिकड़म लड़ा गये तो आप टापते रह जायंगे। शादी के बाद आपकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ जायगी।"

"शादी की भी आपने खूब याद दिलाई, जब मैं मसूरी से आया तो भाई साहब ने कहा कि बेटा, मैं तुम्हारी शादी का इन्तज़ाम कर रहा हूँ।"

"सच ?"

"सच ?"

"तो बेचारी उमा का क्या बनेगा ?"

सुरेश ने सिर झुका लिया और गहरी सोच में डूब गया। श्रीमती सक्सेना ने तनिक सोचकर कहा—"आप ग़ज़ब कर रहे हैं। अब दुनिया में उमा आपको और सिर्फ़ आपको अपनी ज़िन्दगी का सहारा समझती है। और आप कहीं दूसरी जगह शादी कर लेगें तब उस बेचारी का क्या बनेगा, ज़रा सोचिये तो ?"

सुरेश ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—"मैंने सोच लिया है।"

"मैं भी सूनूं।"

"मेरी शादी उमा से ही होगी।"

बारह

दोनों जहन तेरी मुहब्बत में हार के,
वह जा रहा है कोई शबे-ग़म गुज़ार के।

डाकिया आया तो सुरेश दूकान के दरवाजे पर खड़ा था। यह सोचकर कि शायद उमा का ख़त आया हो, उसने बढ़कर सारी चिट्ठियाँ ले लीं। उसका अनुमान ठीक निकला। पता देखकर ही वह उमा की चिट्ठी पहचान गया। लेकिन काउण्टर पर उसका भाई बैठा था, अतएव उसने धड़कते हुए दिल के साथ उमा की चिट्ठी वहीं पर गिरा दी और बाकी डाक भाई को दे दी। फिर वह बाहर चला आया और मौका पाकर उसने चिट्ठी को पतलून की जेब में रख लिया।

भाई को अंगरेजी थोड़ी ही आती थी इस लिये सारे पत्र सुरेश को पढ़ने पड़ते थे। उसने सोचा, दूकान की डाक पढ़ लेने के बाद इतमीनान से उमा का प्रेम-पत्र पढ़ूँगाँ।

लेकिन दोपहर तक उसे लिफ़ाफ़ा खोलने का अवसर न मिला। दोपहर को जब भाई नशे में बेसुध होकर काउण्टर पर सिर रखे खर्राटे ले रहा था तब सुरेश उस मेज से, जिस पर टॉफी और चाकलेट के मिर्तबान रखे थे, टेक लगाकर बैठ गया। उसने धड़कते हुए हृदय और कांपती हुई उगलियों से लिफ़ाफ़ा फाड़ा और पत्र को दो तीन बार उलट-पुलट कर देखने के बाद से पढ़ना शुरू किया। लिखा था:—

प्यारे सुरेश जी !

जब से आप गये हैं, मैं आपको एक जरा सा कार्ड भेजने के बाद तफसील से कोई चिट्ठी नहीं लिख सकी। कारण यह था कि चाचा जी आ गये। वे दिन भर घर ही में बैठे रहते और लोग उनसे मिलने के लिये आते रहते। वे इन क्वार्टरों को बेंच डालने की फिक्र में हैं। अधिक तो मालूम नहीं परन्तु इतना जानती हूँ कि अब यह काम जल्द ही खतम हो जायगा और फिर मैं उनके साथ वापस चली जाऊँगी।

आप जानते ही हैं कि आपके पीछे मेरा क्या हाल है। पहले मेरा विचार था कि आपसे मिलकर मेरे मन को शान्ति मिलेगी, और जब आप यहां थे तब सचमुच मुझे अत्यधिक शान्ति मिली लेकिन मुझे यह पता नहीं था कि आपका वियोग मुझे इतना तड़पायेगा।

आपके जाने के बाद से मेरी जो दशा है उसका वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है। पहले प्रेम एक चिनगारी था और अब ज्वाला भड़क उठी है। यह आग कैसे बुझेगी, मैं नहीं जानती; आप ही अच्छी तरह जान सकते हैं।

सुनिये ! मैंने आपको बहुत निकट से देखा है। मैंने आपसे बातें की हैं और आप की बातें सुनी हैं। मेरा हृदय आपके हृदय के ताल पर धड़कता रहा है। मुझे यह भी अनुभव है कि मैं आपसे और आप मुझसे अलग नहीं हैं ..लेकिन...न जाने क्यों मेरा मन डरता है। एक अज्ञात भय अपने भयानक पंख फैलाये मेरी आत्मा पर अपनी काली छाया डाल रहा है। मैं उसका वर्णन नहीं कर सकती, उसकी व्याख्या नहीं कर सकती.....क्या कोई आपको मुझसे छीन लेगा ? क्या मैं जीते जी मर जाऊँगी ? क्या आपके साथ बिताए हुए कुछ क्षण केवल मेरे जीवन-ग्रंथ के अत्यन्त सुन्दर पन्ने बनकर रह जायगें ? क्या जिन्दगी भर उनकी याद ही हँसायेगी, उनकी याद ही रुलायेगी ?

उत्तर शीघ्र दीजियेगा।
सदैव आपकी—
उमा

सुरेश ने पत्र का उत्तर तुरन्त लिख भेजा।

इसके बाद तीसरे दिन श्रीमती सक्सेना बड़ी प्रसन्न मुद्रा में उसकी दूकान में दाखिल हुईं। भाई काउण्टर पर बैठा था। उस समय वह बड़ा चौकन्ना दीखता था क्योंकि उसने अभी दो ही पेग लिये थे। श्रीमती सक्सेना जैसी सुन्दर स्त्रियों के हाथ वह सौदा बेचना पसन्द करता था लेकिन उस समय उसने सुरेश को इशारे से समझाया कि उसके मुँह से शराब की दुर्गंध आ रही है, इसलिये वही सौदा दे।

श्रीमती सक्सेना बिस्कुट देखने के बहाने से सुरेश के साथ एक कोने में चली गईं और चुपके से बोलीं—"मिठाई खिलाइये।"

सुरेश मुसकराया—"ज़रूर। किस सिलसिले में?"

श्रीमती सक्सेना ने आँखें मटकाईं,...वह आई हैं।"

"कहाँ"

"मेरे यहाँ...लेकिन ज़रा धीरज रखिये...आज रात को दस बजे के क़रीब आइये हमारे घर। क्लब में साढ़े नौ बजे से ड्रामा होता है। वे चले जाते हैं। आप दोनों अलग कमरे में बातचीत कर सकते हैं। ज़रूर आइयेगा, क्योंकि बस सुबह ही वह चली जायगी..."

सुरेश की ज़बान पर बीसियों सवाल मचल रहे थे किन्तु श्रीमती सक्सेना ने यह कहकर रोक दिया—"अब जल्दी में हूँ। बाक़ी बातें रात को..." यह कहकर उन्होंने बिस्कुटों का डिब्बा बग़ल में दबाया और चल दीं।

बाक़ी दिन सुरेश ने ऐसी बेचैनी से काटा कि उसके भाई को दो एक बार इसका कारण पूछना पड़ा। रात को उसने भाई से कहा कि आज तबियत उदास सी है इसलिये सिनेमा देखने जा रहा हूँ।

वह उड़ता हुआ श्रीमती सक्सेना के बंगले पहुँचा। देखा कि वे बड़ी बेचैनी से बरामदे में टहल रही हैं। उसे देखते ही बोलीं "आपका बड़ा इन्तजार था, अच्छा हुआ आप आ गये। आज मुझे भी क्लब जाने के लिये मजबूर किया जा रहा है। इसलिये मैंने उनसे वादा कर लिया है कि वे चलें मैं आती हूँ। वे तो उमा को भी ले जाने का आग्रह कर रहे थे लेकिन उसने तबियत ठीक न होने का बहाना कर दिया और अब कमरे में लेटी है..... कमरा अलग-अलग है। चलिये, मैं आपको छोड़ आऊँ। हम तो दो बजे तक लौट सकेंगे।"

जिस कमरे में उमा थी उससे कुछ इधर ही श्रीमती सक्सेना रुककर बोलीं—"वह रहा दरवाज़ा और शायद अब इससे आगे जाना मेरे लिये उचित नहीं है। आप बढ़िये और आपस में खूब मिलिये।...समझ गये न ? खूब-खूब मिलिये।" यह कहकर उन्होंने अर्थपूर्ण ढँग से उसका हाथ दाबा और उसे छोड़कर चली गईं।

तनिक रुककर वह उसी प्रकार धीरे-धीरे आगे बढ़ा, जैसे इम्तहान का पर्चा करने जा रहा है। दरवाज़ा अधखुला था......

उसे ऐसा लगा मानो वह न जाने कितने वर्षों के बाद उमा से मिलने जा रहा हो।

उसने दरवाज़ा खोल दिया। कमरे की चीज़ें बिजली के तीव्र प्रकाश में जगमगा रही थीं।

......और उमा !!

वह पलंग की पट्टी पर हाथ टेके बैठी थी। उसके पीछे एक सुन्दर खिड़की दिखाई पड़ रही थी। ऐसा लगता था मानो उमा की मोहिनी सूरत चौखटे में जड़ी हुई हो।

सुरेश को भीतर प्रवेश करते देख उसके भारी पपोटों और घनी पलकों में कुछ हरकत हुई लेकिन उसके बाद उसकी आँखें झुक गईं।

यह बात सुरेश को बड़ी अजीब मालूम हुई, क्योंकि वह समझता था

कि उमा दौड़कर आयेगी और उसके गले में बाहें डाल देगी......वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया और पास पहुँचकर उसने उसकी ठोड़ी के नीचे उंगली रखकर उसका चेहरा ऊपर उठाया और चुपचाप उसके होंटों पर होंठ रख दिये।

उमा के होंठ बर्फ़ के समान ठण्डे थे।

लेकिन थोड़ी देर के बाद उनमें गर्मी उत्पन्न हुई और फिर अकस्मात् बिजली की सी फुर्ती से वह उठी और उसके गले से लिपटकर उसे ज़ोर से खींच लिया।

कुछ मिनट तक वे इसी तरह खड़े रहे। जब सुरेश को अपनी गर्दन कुछ भीगती सी लगी तो उसने जल्दी से उमा का चेहरा पीछे हटाया। उसने देखा कि उमा की आँखों से आँसू बह रहे थे।

"उमा ! उमा !!" उसने पागलों की तरह चिल्लाकर पूछा—"क्या बात है ?"

उमा की आँसुओं में डूबी हुई पुतलियाँ निश्चल हो गईं। उसने बड़ी कठिनाई से कहा—"चाचा ने मेरी शादी तय कर दी है।"

सुरेश स्तब्ध रह गया, "कहाँ ?"

"मालूम नहीं।"

"लेकिन ऐसा नहीं हो सकता......"

उमा चुपचाप सिसकियाँ भरती रही।

"लेकिन उमा, ऐसा नहीं हो सकता.. ऐसा नहीं होगा......उमा, कहो ऐसा नहीं होने दूँगी।"

उमा के होंठ बन्द थे।

सुरेश टूटे हुए पेड़ की तरह नीचे की ओर सरकता हुआ ज़मीन पर गिर पड़ा। उसकी बाहें उमा की टाँगों से लिपटी हुई थीं और उसने क्षीण स्वर में कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है ?"

उमा मूर्तिवत खड़ी थी।

तेरह

यह अहदे-तर्के-मुहब्बत है किस लिये, आखिर,
सकूने-क़लब इधर भी नहीं उधर भी नहीं !

उस रात उनकी आखिरी मुलाक़ात थी। इसके बाद के दिन बड़ी ही उदासी में बीते। सुरेश का मन उदास रहता था लेकिन इन सब बातों के बावजूद उसने आशा नहीं छोड़ी।

दिन बीतते गये। उमा की ओर से कोई पत्र या कोई सूचना नहीं मिली थी। यहां तक कि डेढ़ महीना बीत गया। अब सुरेश की चिन्ता गहरी हो गयी। वह सोचता कि कम से कम उमा एक पत्र तो डाल सकती थी।

उधर भाई ने उस पर शादी के लिये ज़ोर डालना शुरू कर दिया था। दिन-रात अजीब बेचैनी और उलझन में कट रहे थे।

एक दिन भाई की उपस्थिति में ही श्रीमती सक्सेना दूकान में आई और उसके भाई की नज़र बचाकर धीरे से बोलीं—"आज हमारे यहां आइयेगा।"

सुरेश ने देखा कि श्रीमती सक्सेना नित्य की भाँति प्रसन्न नहीं दीखती थीं।

इसके बाद श्रीमती सक्सेना ने अधिक कुछ कहने का मौका नहीं

दिया और तुरन्त चल दीं।

श्रीमती सक्सेना के जाने के बाद सुरेश ने देखा कि उसका भाई नशे में चूर बड़े ध्यान से उसे देख रहा है। दोनों की नज़रें मिलते ही उधर से इशारा हुआ—आओ।

सुरेश अपनी जगह पर रुका रहा।

उसके भाई के होंठों पर मुसकराहट खेलने लगी। सुरेश की शादी की चरचा करने से पहले उसके होटों पर हमेशा इसी प्रकार की मुसकराहट खेला करती थी। और सुरेश भाई की इस बात-चीत से बुरी तरह ऊब चुका था।

दोबारा बुलाये जाने पर सुरेश धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ा। भाई नशे में मस्त था। उसका सिर डगमगा रहा था। वह काफ़ी देर तक अपने खास अन्दाज़ में सुरेश की ओर देखता और मुसकराता रहा। फिर बोला—"अच्छी है!"

"कौन?"

"वही, अपनी मिसेज़ सक्सेना।'

सुरेश चुप रहा। भाई हंसने लगा।

"बेटा...हम बड़े घाघ हैं!"

सुरेश ने विरक्त दृष्टि से इधर-उधर देखा। दूकान की हर चीज़—बड़े भाई सहित—हर चीज़ से वह कितना विरक्त हो गया था। उसने जवाब दिया—"लेकिन..."

भाई ने अपनी कांपती हुई उंगली उठाई और नशे में लाल आंखों से 'बेटा' की ओर देखा, "लेकिन ज़माना नाज़ुक है..."

सुरेश चुप रहा।

"ठीक?"

"ठीक।"

इसके बाद कुछ देर मौन रहा। फिर भाई ने अपने सूजे हुए पपोटों

को ऊपर उठाया और बोला—"सुरेश ! मैंने तुम्हारे लिये एक रिश्ता ठीक किया है।"

"मुझे शादी नहीं करनी है।"

"कारण ?"

"भाई साहब ! बहस करने से कोई फ़ायदा नहीं। मुझे अभी शादी करने की ज़रूरत नहीं महसूस होती।"

"महसूस नहीं होती...च्-च्-च,.... कुछ भी महसूस नहीं होता ?"

सुरेश चुप रहा।

"हूँ ?"

"देखिये भाई साहब, मुझे परेशान न कीजिये। मैं ज़िन्दगी में जो कुछ करना चाहता था, वह तो आपने करने नहीं दिया अब इन बातों से क्या फ़यदा ?"

"तुम क्या करना चाहते थे ?"

"मैं पढ़-लिखकर अपनी ज़िन्दगी सँवारना चाहता था।"

"तुम पढ़-लिखकर ज़िन्दगी सँवारना चाहते थे। मैंने बिना पढ़ाये लिखाये तुम्हारी ज़िन्दगी सँवार दी।"

"आप इसे ज़िन्दगी कहते हैं ?"

"तुम्हारा इशारा मेरी तरफ़ है ? ठीक है, मेरी ज़िन्दगी ज़िन्दगी नहीं लेकिन तुम्हारी ज़िन्दगी तो बन सकती है। कार-बार चला चलाया है। बस, अब शादी कर लो और चैन की बंसी बजाओ।"

"चैन की बंसी ?" यह कहते-कहते सुरेश का गला भर आया।

उसकी यह दशा देख भाई ने बात को आगे नहीं बढ़ाया।

जैसे-तैसे करके शाम हुई और सुरेश ने पांच बजे के क़रीब भाई से आज्ञा लेकर टाँगा मगंवाया और सीधा श्रीमती सक्सेना के बंगले पहुँचा।

श्रीमती सक्सेना अपने पति के साथ लान में बैठी थीं। श्री सक्सेना

कुछ फ़ाइलें उलट-पुलट रहे थे और श्रीमती सक्सेना चाय बना रही थीं ।

श्रीमती सक्सेना ने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया ।

"खूब वक्त पर आये । हम एक-एक प्याला चाय पी चुके हैं आपका इन्तज़ार हो रहा था ।"

सुरेश ने चाय का प्याला पीना शुरू किया । श्रीमती सक्सेना ने एक चिट्ठी उसकी ओर खिसकाते हुए कहा—"उनकी चिट्ठी है ।"

सुरेश ने कांपते हुए हाथों से चिट्ठी खोली और जल्दी-जल्दी पढ़ने लगा । लिखा था:—

मेरी आशाओं के देवता !

मैंने इतने दिनों तक आपको पत्र नहीं लिखा । मुझ अबला ने जो कुछ बन पड़ा किया लेकिन दुर्भाग्य की बढ़ती हुई छाया अब मुझ पर पूरी तरह छा गई है । इतने दिन इसी उधेड़-बुन में रही । जो होने वाला था उसकी सूचना तो मैं आपको ज़बानी ही दे चुकी थी । इसके बाद यही सोचा था कि अगर कोई बच निकलने का उपाय हो तो शायद हमारे दिन फिर जायँ ।

एक हफ्ते तक मेरी शादी हो जायगी । यह दुनिया वालों की नज़रों के सामने होगी । भगवान के सामने जिसके साथ होनी चाहिए थी, हो चुकी ।

मैं इस संकट से बचने के लिये या तो आत्म-हत्या कर सकती थी, या घर से भाग जाती । लेकिन मैं इन दोनों में से कोई काम करना नहीं चाहती । इसका कारण है ।

आप जानते ही हैं कि मेरे माता-पिता मर चुके हैं । मुझे उनकी सूरत तक याद नहीं । क्योंकि मैं बिलकुल बच्ची थी, जब उनका देहान्त हुआ । लेकिन दादी से मैंने सुना है कि वे दोनों बहुत ही भले आदमी थे । बहुत भले, सज्जन और लोकप्रिय । उनकी मृत्यु के बाद मुझे मेरे

चाचा-चाची ने पाला-पोसा। उन्होंने मेरे लिये बहुत कुछ किया। लेकिन मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि उनकी छत्र-छाया में मुझे अपनी प्यारी मां और पिता की याद हमेशा सताती रही।

यदि मेरे माता-पिता जीवित होते तो मुझे पूरा विश्वास है कि वे अपनी प्यारी बेटी की आशाओं का खून कभी न होने देते। मैं चाहती तो उनके सामने हठ कर सकती थी। मैं उनको अपने दिल का हाल खोलकर बता सकती थी और यदि फिर भी वे मेरा खयाल न करते तो शायद मैं विद्रोह भी कर उठती.....लेकिन, अब वे इस संसार में नहीं हैं। अब उन स्वर्गवासी माता-पिता की लाज मेरे हाथ में है। संसार के सामने उनकी मृत्यु के बाद चाचा ने मुझे पाला-पोसा। अब यदि मैं आत्म-हत्या कर लूँ या भाग निकलूँ तो दोनों बातों से मेरे स्वर्गीय माता-पिता की आत्माओं को दुख पहुँचेगा।

काश, मेरे माता पिता जीवित होते तो मैं भी दूसरी लड़कियों की तरह पलती-बढ़ती। प्रेम का झूलना झूलती, हठ करती या कुछ भी करती। किन्तु अब आप ही बताइए कि मेरे लिये सिवा चुप रहने के दूसरा उपाय ही क्या है?

मैं नहीं जानती कि आपसे कैसे बताऊँ कि मेरे मन पर क्या बीत रही है। मैं यह भी जानती हूँ कि आपका जीवन भी बरबाद हो जायगा। लेकिन इस समय दो स्वर्गीय आत्माओं की आबरू बचाने का सवाल है। आप मेरा हाथ बटाइये।

मैं लिख रही हूँ और रो रही हूँ। आप श्रीमती सक्सेना से सलाह कीजिये। यह चिट्ठी मैं उनकी मार्फ़त इसलिये भेज रही हूँ कि आपको बिना किसी कठिनाई के मिल जाय।

मैं हमेशा आपकी याद में रोती रहूँगी।

आपकी अभागिनी—

उमा।"

चौदह

वह मेरे होके भी मेरे न हुये
उनको अपना बना के देख लिया

सुरेश पत्र पढ़ चुका तो श्रीमती सक्सेना ने चिंतत स्वर में पूछा—"कहिये क्या मामला है ?"

सुरेश श्री सक्सेना की उपस्थिति के कारण कुछ हिचकिचाया तो श्रीमती सक्सेना ने कहा —"देखिये, मैंने उन्हें भी सब कुछ बता दिया है। क्योंकि अब तो यह मामला उस मंजिल पर है कि आपस में सलाह मशविरा करना जरूरी है इसलिए आप किसी तरह की परेशानी महसूस न करें।'

"जी ठीक है। उमा ने बात तो वही पुरानी दोहराई है कि उसकी किसी और जगह शादी तय हो गई है। एक हफ्ते तक शादी हो जायगी।'

"एक हफ्ते तक ? इसके माने वक्त बहुत कम है।"

"जी हाँ। लेकिन अगर वक्त ज्यादा भी होता तो उसका कोई अच्छा फल नहीं निकल सकता था।"

"आप इस तरह निराश न होइये। अगर कोशिश की जाय तो सब कुछ हो सकता है।" फिर वे पति की ओर देखकर बोली—"क्यों जी, आपका क्या ख्याल है ?"

श्री सक्सेना ने फाइलों से ध्यान हटाकर जरा आँखों को मला और फिर चेहरा ठीक करते हुए कहा—"ओह ! अच्छा, उमा वाला किस्सा। अब क्या हाल है उसका ?"

श्रीमती सक्सेना ने सुरेश की ओर देखा जिस पर सुरेश ने कहना शुरू किया—"अब हाल यह है कि एक हफ्ते तक शादी होने वाली है। और उन्होंने लिखा है कि अगर मैं आत्महत्या करूँ या विद्रोह करूँ तो दोनों तरह से उनके स्वर्गीय माता-पिता की आत्मा को दुख होगा। लोग कहेंगे कि चाचा ने पाला-पोसा लेकिन उन्हीं के सामने ऐसी निर्लज्ज हो गई।"

श्रीमती सक्सेना बोलीं—"आत्महत्या का तो खैर सवाल ही नहीं पैदा होता। आखिर आत्महत्या से फायदा ही क्या ? यह तो बच्चों की सी बातें हैं। अलबत्ता दूसरी चीज पर गौर किया जा सकता है।"

सुरेश ने कहा—"लेकिन उन्होंने यह भी तो लिखा है कि वह दूसरी बात करने को भी तैयार नहीं क्योंकि इस तरह उनके स्वर्गीय माता-पिता की आत्माओं को दुख होगा।"

श्रीमती सक्सेना बोलीं—"तो इसके यह माने हुए कि उसने पक्का निश्चय कर लिया है कि वह इस मामले में चुप ही रहेगी।"

"जी।"

इस पर श्रीमती सक्सेना ने पति की ओर देखा—"अब बताइये आपको कोई हल सूझता है या नहीं ?"

श्री सक्सेना ने गम्भीरता से सिर पर हाथ फेरते हुए धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"कानूनी पोजीशन तो यही है कि जब लड़की बालिग हो तब उसे इस बात का पूरा-पूरा अधिकार है कि वह जहां चाहे शादी करे। चाचा जबरदस्ती तो नहीं कर सकते। पर मालूम होता है कि लड़की बहुत ज्यादा भावुक है।"

"भावुक तो है।"

"वही बात तो मैं भी कह रहा हूँ। अगर वह सरकार को इस मतलब की एक अर्जी भेज सकती कि उसकी शादी बिना मर्जी के हो रही है तो अवश्य ही सब को इस मुसीबत से छुटकारा मिल जाय।"

"यह ठीक है।" सुरेश ने कहा—"लेकिन वह ऐसा कभी नहीं करेंगी।"

इस पर श्री सक्सेना और उनके साथ श्रीमती सक्सेना तथा सुरेश तीनों सिर झुकाकर सोच में डूब गए। अन्त में श्री सक्सेना ने कहा—"उसका एक और कुछ नर्म हल हो सकता है।"

"वह क्या ?"

श्री सक्सेना ने तनिक सोचा फिर बोले—"यह हो सकता है कि अगर उमा अपनी चाची या किसी अन्य सहेली के जरिये यह बात चाचा के कानों तक पहुँचा दे कि उसका विवाह उसकी इच्छा के अनुकूल नहीं हो रहा है तो हो सकता है, वे इस पर गौर करने को तैयार हो जायं।"

"राय तो उचित है।" यह कहकर श्रीमती सक्सेना ने सुरेश की ओर, उसके मन का हाल जानने के लिये, देखा।

सुरेश को भी यह बात ठीक जँची। कुछ सन्तुष्ट सा होकर उसने चाय की एक और प्याली तैयार की।

श्रीमती सक्सेना ने कहा—"हाँ, तो यदि वह इतनी सी हिम्मत कर जाय तो इसमें बदनामी की भी कोई बात नहीं होगी। अच्छा, तो मैं उसे ख़त लिखूँगी।"

"लिखूँगी क्या अब लिख डालो। बल्कि लाओ मैं लिखवा दूँ।"

श्रीमती सक्सेना ने कहा—"बहुत अच्छा। नौकर को आवाज़ देकर राइटिंग-पैड मगवाइए।"

श्रीमती सक्सेना चिट्ठी लिखाने को बैठ गई। श्री सक्सेना ने कहा—"अच्छा भाई, शुरू में तो आप जो कुछ लिखती हैं, वैसे लिख

दीजिए ।"

"लिख दिया ।"

आगे लिखिए—"तुम्हारे कहने के अनुसार तुम्हारी चिट्ठी सुरेश जी को दे दी गई इस समय वे यहीं बैठे हैं ।

"शायद तुम इसका अनुमान न कर सको कि हम सबको तुम्हारा पत्र पढ़कर कितना दुःख हुआ । हमारे दिलों पर निराशा की काली घटा छाई हुई है ।

"मनुष्य के जीवन में वैसे तो अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब उसे कोई राह नहीं सूझती । लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि आदमी ऐसे अवसरों पर अपना मानसिक सन्तुलन न बिगड़ने दे । मेरा मतलब यह नहीं कि तुमने ऐसा किया है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुमने बहुत अधिक भावुक होने का परिचय दिया । भावुकता ऐसे अवसर पर कोई लाभ नहीं पहुँचाती ।

"तुम इस समय जो भी क़दम उठाओगी उस पर तुम्हारे भावी जीवन की भलाई या बुराई निर्भर करेगी । यह हो सकता है कि अपनी भावुकता के कारण तुमको अपनी भूल का अनुभव न हो लेकिन वह दिन भी दूर नहीं जब तुम्हें अपनी उस जल्दबाजी का बहुत कुछ अनुभव होगा किन्तु फिर पछताने से कोई लाभ न होगा । और तुम्हें जीवन पर्यन्त पछताते रहना पड़ेगा ।

"तुम यह न समझो कि मैंने तुम्हारी भावनाओं को पूरे तौर पर महसूस नहीं किया । विश्वास करो कि मैंने इस सवाल के हर पहलू पर पूरी तरह विचार किया और तुम्हारे एक-एक शब्द पर पूरी सहानुभूति से विचार किया । लेकिन फिर भी मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हो सकती ।

"एक छोटा सा उपाय मेरी समझ में आया है । मेरी योजना ऐसी है कि तुम्हारी भावनाओं को ठेस भी न लगेगी, और तुम्हारे स्वर्गवासी माता-पिता की आत्माओं को दुःख भी न पहुँचेगा । तुम यह भी तो

सोचो कि तुम्हारे माता-पिता की आत्माएँ तुमको दुःखी देखकर कैसे सुखी हो सकती हैं। उनको तो तुम्हारे सुख से ही सुख होगा।

मेरी योजना यह है कि तुम किसी सहेली या चाची द्वारा अपने चाचा तक अपने विचार पहुँचा दो और देखो कि इसका क्या फल निकलता है। जो बुरा होना है वह तो ख़ैर हो ही रहा है या, भगवान करे, शायद होकर ही रहे, लेकिन मेरी इस योजना पर चलने से न तुम विद्रोहिणी कहलाओगी न अपने स्वर्गीय माता-पिता की आत्माओं को दुःख पहुँचाओगी।

मैं तुमसे फिर कहती हूँ कि मेरी योजना पर चलने की कोशिश ज़रूर करो क्योंकि इस पर दो जीवनों के आबाद या बर्बाद हो जाने का सवाल निहित है। ज़रा साहस की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि तुम मेरी राय पर ज़रूर चलोगी।

तुम्हारी—

.........."

पत्र समाप्त हुआ तो तुरन्त लिफ़ाफ़े में बन्द करके स्टेशन पर भिजवा दिया गया, जिसमें कि उसी रात को निकल जाय।

इससे छुट्टी पाकर श्री सक्सेना सुरेश की ओर देखकर बोले—"एक ज़रा सी हिम्मत आप भी कर सकते हैं!"

"क्या?" सुरेश ने चौंककर पूछा—"मैं क्या कर सकता हूँ, मेरे वश में क्या है?"

इस पर श्री सक्सेना फिर कुछ सोचने लगे और कहा—"आप अपने भाई साहब पर सारा भेद खोल दें। उन्हें आपकी शादी तो करनी ही है......"

"लेकिन वे तो कुछ और इन्तज़ाम कर रहे हैं।"

"ठीक है, लेकिन कोशिश ही तो करनी है। उसमें हर्ज ही क्या है! आख़िर वह आपको मुँह में तो नहीं डाल लेंगे।"

"आपका कहना सिर माथे पर, लेकिन वह बहुत ज़िद्दी और उजड्ड टाइप के आदमी हैं। कभी नहीं मानेंगे।"

"फिर भी, आप वादा कीजिये कि आप कोशिश करेंगे। यदि वे राज़ी हो जायँ तो वे स्वयं उमा के चाचा से मिलकर इस सम्बन्ध में बात-चीत कर सकते हैं।"

....

पन्द्रह

न जाने किस लिये उम्मीदवार बैठा हूँ,
इक ऐसी राह पै जो तेरी रहगुज़र भी नहीं।

श्री सक्सेना के यहाँ से उठकर सुरेश अपने घर को चला तो उस समय रात के दस बज चुके थे। श्री सक्सेना ने एक अनुभवी आदमी की तरह स्थिति को सुधारने से लिये एक सम्भव और ठोस क़दम उठाया था। साथ ही वे उसको ऐसा समझाते रहे कि जीवन में पुरुषों को बहुत से संकटों का सामना करना पड़ता है इसलिये निराश नहीं होना चाहिए।

लेकिन सुरेश पर इन उत्साहप्रद उपदेशों का उलटा असर होता था। उसके लिये जिन्दगी के माने खतम हो चले थे। उसने श्री सक्सेना की सन्तुलित बातों पर विचार किया तो यह सोचा कि हर मनुष्य की रचना विभिन्न तत्वों से होती है इसलिये यह जरूरी नहीं कि किसी एक बात की प्रतिक्रिया सब पर एक सी हो।

इसी उधेड़-बुन में वह घर पहुँचा। देखा कि अन्दर हँसने बोलने की आवाज़ें आ रही हैं। उसके बड़े भाई की आवाज़ सबसे ऊँची थी। मालूम होता था कि वह आज बहुत अच्छे मूड में है। अन्दर पहुँचकर उसने देखा कि आंगन में भाई चारपाई पर लेटा है और बच्चे उसके पेट पर कूद-फाद रहे हैं। उसको देखते ही उसका भाई, जो इस समय

भी नशे में चूर था, बोला—"लो भई, तुम्हारे 'अंकिल' आ गए। अब इनकी सवारी करो।"

बच्चों का रूख पलटा ही चाहता था कि उनकी माँ ने चिल्लाकर कहा—"अरे, ठहरो, बेचारा थका मांदा आया है, खा पी लेने तो दो।"

यह बात सुनकर भाई ने शरीर ढीला छोड़ दिया और बोला—"लो भई, और थोड़ी देर तक हमारी हड्डियाँ तोड़ लो।"

सुरेश की भाभी सीधी-सादी और तनिक हँसमुख स्त्री थी। सुरेश ने उसे अपना भेद तो नहीं बताया था लेकिन फिर भी दोनों को एक दूसरे से हमदर्दी जरूर थी।

वह भोजन करने बैठा तो उसके विचार भाभी के हँसमुख स्वभाव और दयालु प्रकृति की ओर केन्द्रित हो गये।

भाभी उसकी उदासी का असली कारण तो नहीं जानती थी लेकिन वह अपनी समझ में यही सोचे बैठी थी कि यदि उसका विवाह हो जाय तो अवश्य ही उसकी दशा में परिवर्तन हो जायगा। अतएव उसने हाथ से पंखा डुलाते हुए कहा—"अरे सुरेश बाबू, आखिर यह क्या बात है?"

सुरेश ने चौंक कर सिर उठाया—"क्या बात भाभी?"

"अरे यही,......जानते हो, अब तुम्हारी शादी हो जानी चाहिये..."

शादी शब्द से उसे चिढ़ सी होती जा रही थी। वह चुपचाप भोजन करता रहा। उसे कोई जवाब सूझ ही न रहा था।

जवाब का काफ़ी इंतजार करने के बाद भाभी फिर बोली—"मैं क्या कह रही हूँ?"

"क्या?"

"यही कि तुम शादी क्यों नहीं कर लेते?"

"अजी छोड़ो।"

"छोड़ूँगी नहीं। अब तो नन्हीं सी छम्-छम् करती दुल्हन लाकर ही छोड़ूँगी।"

सुरेश सिर हिलाकर रह गया।

"आखिर तुम्हें इनकार क्यों है?"

सुरेश को कुछ न सूझा तो बोला—"अच्छा, जो आपकी मर्जी।"

भाभी यह सुनकर मारे खुशी के फूलकर कुप्पा हो गई। चिल्लाकर बोली—"अजी सुनते हो!"

उधर बच्चों ने शोर मचा रखा था। भाई ने मुश्किल से सिर उठाया—"क्या बात है भाई?"

"सुरेश मान गया है।"

"क्या मान गया है?"

"शादी करने पर राज़ी हो गया है।"

भाई उछलकर चारपाई पर बैठ गया—"अरी सच?"

"हाँ, सच।"

"वाह! वाह!......तब मुँह मीठा करो हमारा।"

सुरेश भोजन करके उठा तो भाई पुकार कर बोला—"अरे भई, इधर आओ, ज़रा तुमसे बातचीत हो जाय।"

लेकिन सुरेश ने कहा—"कल।"

यह कहकर वह अपनी चारपाई की ओर बढ़ा।

भाई ने दोनों हाथ हिलाकर आश्चर्य प्रकट किया तो पत्नी पास आकर भरे-भरे स्वर में बोली—"अभी शर्माता है।"

दूसरे दिन सुबह के वक्त तो दूकान पर काफ़ी भीड़ रही। हाँ, दोपहर के समय जब भाई ने पेग चढ़ाया तो सुरूर की हालत में उसने सुरेश की ओर देखा। आज सुबह बिक्री अधिक होने के कारण भी उसका मन प्रसन्न था। उसने नाचती हुई आँखों से छोटे भाई की ओर देखा और बोला—"आओ बेटा! आज ज़रा तुम्हारी शादी की बातचीत हो जाय।"

जब सुरेश पास पहुँचा तो भाई ने कहना शुरू किया —"मुझे, तुम्हारी भाभी से यह मालूम करके बड़ी खुशी हुई है कि आखिर तुम शादी करने पर राज़ी हो गए। भैया! हम बिगड़े तो बिगड़े, अब तो सुधरने से रहे लेकिन हमारा धर्म कहता कि हम छोटों को सीधे रास्ते पर लगाएँ। समझे?"

"जी!"

"क्या समझे?"

"यही कि आपका धर्म है कि मुझे सीधे रास्ते पर लगाएँ।"

इस पर भाई ने हाथ बढ़ाकर उसके कन्धे पर थपकी दी—"यह बात! देखो, ज़माना नाज़ुक है। हम में लाख बुराई सही लेकिन फिर भी हम तुमसे बड़े हैं। तुम हमसे अधिक पढ़े लिखे हो लेकिन हमने तुमसे अधिक दुनिया देखी है। ठीक?"

"ठीक!"

"मतलब यह कि हमारा तजरबा तुमसे अधिक है। तुम सयाने हो, समझदार हो, यह हम जानते हैं, लेकिन दुनिया की कई ऐसी बातें हैं जिनसे तुम धोखा खा सकते हो। मेरी बातों को बुरा मत माना करो। मुझमें भी बुराइयाँ हो सकती हैं, लेकिन एक दिन आयेगा जब तुम महसूस करोगे कि तुम्हारा भाई उतना बुरा नहीं जितना तुम समझते हो। यह हो सकता है कि तुमको हमारी कोई बात पसन्द न आये लेकिन तुमको इस बात का पता होना चाहिये कि हम तुमको दिल से चाहते हैं और अपनी समझ-बूझ के मुताबिक़ हमेशा तुम्हारी भलाई ही सोचते हैं।"

लेकिन भाई साहब, मैंने तो आपको कभी बुरा नहीं कहा।"

"नहीं भैया, तुमने कहा नहीं कि हम बुरे हैं लेकिन हम अपनी राइयां स्वयं ही जानते हैं ...अच्छा अब बताओ शादी के बारे में तुम्हारे या विचार हैं?"

"जो आपकी खुशी सो मेरी खुशी।"

"शाबाश ! शाबाश !! शाबाश !!! तुमने हमारा जी खुश कर दिया ।"

"आपका कहना मानना मेरा धर्म है ।"

"जीते रहो । अच्छा, अब तुम्हें कुछ रिश्ते जो आए हैं वह बताएँ जिससें कि तुम्हारी राय भी मालूम हो जाय । मैं इस बारे में तुम्हारी राय जानना ज़रूरी समझता हूँ ..."

सुरेश ने बात काटते हुए कहा—"लेकिन भाई साहब, अगर मैं आपसे कहूं कि मैंने अपनी जीवन संगिनी चुनली है तो ?"

भाई को अश्चर्य हुआ, "चुनली-है......" फिर हंसते हुए बोला—"मिसेज़ सक्सेना तो नहीं ?"

"वह मेरी क्लास फेलो थी ।"

"क्लास फ़ेलो ?.....हम बड़े घाघ हैं । हम पहले ही जानते थे कि दाल में कुछ काला ज़रूर है ।"

"लेकिन भाई साहब, जब आप मेरी शादी करना ही चाहते हैं तो फिर अगर मेरी शादी ऐसी लड़की से हो जाय जो मुझे पसन्द हो तो क्या बुराई है ?"

भाई ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया, "कोई बुराई नहीं, कोई बुराई नहीं ।"

"तो क्या आप इस बारे में मेरी मदद करेंगे ।"

'ज़रूर, ज़रूर ! तुम ज़रा खुलकर बात करो । मैं तुम्हारी मदद नहीं करूंगा तो कौन करेगा ?"

सोलह

बुझी हुई शमा का धुआँ हूँ,
और अपने मरकज़ को जा रहा हूँ !

यह बरसात की एक दोपहर की बात है।

बम्बई में दादर रेलवे-स्टेशन से छः-सात मील की दूरी पर एक नई बस्ती के अधिकांश मकान बन चुके थे, लेकिन अब भी काफ़ी मकान ऐसे थे जिनके निर्माण का काम पूरा नहीं हो पाया था। बने हुए सभी मकान अभी आबाद नहीं हुए थे।

दोपहर का समय था लेकिन पूरब से एक काली घटा हथियों की फौज की तरह झूमकर उठी और दोपहर गहरी शाम में बदल गई।

एक प्रौढ़ अवस्था का व्यक्ति मकानों के सिलसिले में से निकलकर खुली जगह में जा खड़ा हुआ। उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा। शायद वह सोच रहा था कि वह आगे बढ़े या घर को लौट जाय लेकिन फिर उसने निर्णयात्मक ढँग से क़दम आगे बढ़ाया और जल्दी-जल्दी चल खड़ा हुआ।

वर्षा होना ही चाहती थी। बादल तुले हुए थे। वृक्ष चुपचाप और निश्चल खड़े थे मानो किसी महत्वपूर्ण घटना के घटने की प्रतीक्षा कर रहे हों।

उस व्यक्ति को ढाई-तीन फर्लाङ्ग से अधिक नहीं चलना था लेकिन उस समय तो एक क्षण का भी भरोसा नहीं था, अतएव जब वह कच्ची सड़क छोड़कर एक नये मकान के फाटक में घुसा तो एकदम बहुत बड़ी-बड़ी बूँदें बरसने लगीं। बरामदे तक का फासला उसने लम्बे-लम्बे डग भरते हुए तय किया।

चौड़े बरामदे में सरकण्डे की कुछ कुर्सियाँ बिछी थीं, एक कोने में एक तख्त भी बिछा था जिस पर एक गद्दा, गद्दे पर चादर और उस पर एक बड़ा सा गाव-तकिया लगा था।

जब वह व्यक्ति बरामदे में दाखिल हुआ तो तख्त पर बैठे हुए अधेड़ अवस्था के एक पुरुष का क्षीण स्वर सुनाई दिया—"आइये राम बाबू।"

नवागन्तुक ने हँसते हुए कहा—"सुरेश बाबू! आप भी मन में सोचते होंगे कि मुझे आज भी घर पर बैठना नसीब नहीं हुआ।

सुरेश की आयु चालीस वर्ष से कुछ आगे ही पहुँच चुकी थी। सिर के अधिकांश बाल पक गये थे। चेहरे की रेखाओं और अन्य लक्षणों से प्रकट होता था कि वह काल के हाथों बहुत सताये गये थे किन्तु आँखों में वही पुरानी जिज्ञासा और एक गहरी उदासी झलक रही थी। उस समय मोटे सूती कपड़े की चारखाने की कमीज़ पहने वे बग़ल में गाव-तकिया दबाये बैठे थे। राम बाबू को देख कर उन्होंने पहलू बदला और कहा—"मैं खुद आपका इन्तज़ार कर रहा था। लेकिन फिर यह सोचकर उदास हो जाता कि शायद इस काली घटा को देखकर आप रुक जायं।

"अजी नहीं, हम काली घटाओं से डरने वाले नहीं हैं। कल जो आपने बात शुरू की तो विश्वास कीजिए, उसके अधूरे रह जाने से मुझे रात भर नींद नहीं आई। नींद आई भी तो स्वप्न में आपकी कहानी ही दिखाई पड़ती रही......।"

राम बाबू ने बात खतम नहीं की थी कि सुरेश को दम्मे का दौरा पड़ा और दो ढाई मिनट तक उनकी नीचे की सांस नीचे और ऊपर की

सोलह

बुझी हुई शमा का धुआँ हूँ,
और अपने मरकज़ को जा रहा हूँ !

यह बरसात की एक दोपहर की बात है ।

बम्बई में दादर रेलवे-स्टेशन से छः-सात मील की दूरी पर एक नई बस्ती के अधिकांश मकान बन चुके थे, लेकिन अब भी काफ़ी मकान ऐसे थे जिनके निर्माण का काम पूरा नहीं हो पाया था । बने हुए सभी मकान अभी आबाद नहीं हुए थे ।

दोपहर का समय था लेकिन पूरब से एक काली घटा हब्शियों की फ़ौज की तरह झूमकर उठी और दोपहर गहरी शाम में बदल गई ।

एक प्रौढ़ अवस्था का व्यक्ति मकानों के सिलसिले में से निकलकर खुली जगह में जा खड़ा हुआ । उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा । शायद वह सोच रहा था कि वह आगे बढ़े या घर को लौट जाय लेकिन फिर उसने निर्णयात्मक ढँग से क़दम आगे बढ़ाया और जल्दी-जल्दी चल खड़ा हुआ ।

वर्षा होना ही चाहती थी । बादल तुले हुए थे । वृक्ष चुपचाप और निश्चल खड़े थे मानो किसी महत्वपूर्ण घटना के घटने की प्रतीक्षा कर रहे हों ।

उस व्यक्ति को ढाई-तीन फर्लाङ्ग से अधिक नहीं चलना था लेकिन उस समय तो एक क्षण का भी भरोसा नहीं था, अतएव जब वह कच्ची सड़क छोड़कर एक नये मकान के फाटक में घुसा तो एकदम बहुत बड़ी-बड़ी बूँदें बरसने लगीं। बरामदे तक का फासला उसने लम्बे-लम्बे डग भरते हुए तय किया।

चौड़े बरामदे में सरकण्डे की कुछ कुर्सियाँ बिछी थीं, एक कोने में एक तख्त भी बिछा था जिस पर एक गद्दा, गद्दे पर चादर और उस पर एक बड़ा सा गाव-तकिया लगा था।

जब वह व्यक्ति बरामदे में दाखिल हुआ तो तख्त पर बैठे हुए अधेड़ अवस्था के एक पुरुष का क्षीण स्वर सुनाई दिया—"आइये राम बाबू!"

नवागन्तुक ने हँसते हुए कहा—"सुरेश बाबू! आप भी मन में सोचते होंगे कि मुझे आज भी घर पर बैठना नसीब नहीं हुआ।

सुरेश की आयु चालीस वर्ष से कुछ आगे ही पहुँच चुकी थी। सिर के अधिकांश बाल पक गये थे। चेहरे की रेखाओं और अन्य लक्षणों से प्रकट होता था कि वह काल के हाथों बहुत सताये गये थे किन्तु आँखों में वही पुरानी जिज्ञासा और एक गहरी उदासी झलक रही थी। उस समय मोटे सूती कपड़े की चारखाने की कमीज़ पहने वे बग़ल में गाव-तकिया दबाये बैठे थे। राम बाबू को देख कर उन्होंने पहलू बदला और कहा—"मैं खुद आपका इन्तज़ार कर रहा था। लेकिन फिर यह सोचकर उदास हो जाता कि शायद इस काली घटा को देखकर आप रुक जायं।

"अजी नहीं, हम काली घटाओं से डरने वाले नहीं हैं। कल जो आपने बात शुरू की तो विश्वास कीजिए, उसके अधूरे रह जाने से मुझे रात भर नींद नहीं आई। नींद आई भी तो स्वप्न में आपकी कहानी ही दिखाई पड़ती रही......।"

राम बाबू ने बात खतम नहीं की थी कि सुरेश को दम्मे का दौरा पड़ा और दो ढाई मिनट तक उनकी नीचे की सांस नीचे और ऊपर की

सोलह

बुझी हुई शमा का धुआँ हूँ,
और अपने मरकज़ को जा रहा हूँ !

यह बरसात की एक दोपहर की बात है।

बम्बई में दादर रेलवे-स्टेशन से छः-सात मील की दूरी पर एक नई बस्ती के अधिकांश मकान बन चुके थे, लेकिन अब भी काफ़ी मकान ऐसे थे जिनके निर्माण का काम पूरा नहीं हो पाया था। बने हुए सभी मकान अभी आबाद नहीं हुए थे।

दोपहर का समय था लेकिन पूरब से एक काली घटा हथियों की फौज की तरह झूमकर उठी और दोपहर गहरी शाम में बदल गई।

एक प्रौढ़ अवस्था का व्यक्ति मकानों के सिलसिले में से निकलकर खुली जगह में जा खड़ा हुआ। उसने सिर उठाकर आकाश की ओर देखा। शायद वह सोच रहा था कि वह आगे बढ़े या घर को लौट जाय लेकिन फिर उसने निर्णयात्मक ढँग से क़दम आगे बढ़ाया और जल्दी-जल्दी चल खड़ा हुआ।

वर्षा होना ही चाहती थी। बादल तुले हुए थे। वृक्ष चुपचाप और निश्चल खड़े थे मानो किसी महत्वपूर्ण घटना के घटने की प्रतीक्षा कर रहे हों।

उस व्यक्ति को ढाई-तीन फर्लाङ्ग से अधिक नहीं चलना था लेकिन उस समय तो एक क्षण का भी भरोसा नहीं था, अतएव जब वह कच्ची सड़क छोड़कर एक नये मकान के फाटक में घुसा तो एकदम बहुत बड़ी-बड़ी बूँदें बरसने लगीं। बरामदे तक का फासला उसने लम्बे-लम्बे डग भरते हुए तय किया।

चौड़े बरामदे में सरकण्डे की कुछ कुर्सियाँ बिछी थीं, एक कोने में एक तख्त भी बिछा था जिस पर एक गद्दा, गद्दे पर चादर और उस पर एक बड़ा सा गाव-तकिया लगा था।

जब वह व्यक्ति बरामदे में दाखिल हुआ तो तख्त पर बैठे हुए अधेड़ अवस्था के एक पुरुष का क्षीण स्वर सुनाई दिया—"आइये राम बाबू।"

नवागन्तुक ने हँसते हुए कहा—"सुरेश बाबू! आप भी मन में सोचते होंगे कि मुझे आज भी घर पर बैठना नसीब नहीं हुआ।

सुरेश की आयु चालीस वर्ष से कुछ आगे ही पहुँच चुकी थी। सिर के अधिकांश बाल पक गये थे। चेहरे की रेखाओं और अन्य लक्षणों से प्रकट होता था कि वह काल के हाथों बहुत सताये गये थे किन्तु आँखों में वही पुरानी जिज्ञासा और एक गहरी उदासी झलक रही थी। उस समय मोटे सूती कपड़े की चारखाने की कमीज़ पहने वे बग़ल में गाव-तकिया दबाये बैठे थे। राम बाबू को देख कर उन्होंने पहलू बदला और कहा—"मैं खुद आपका इन्तज़ार कर रहा था। लेकिन फिर यह सोचकर उदास हो जाता कि शायद इस काली घटा को देखकर आप रुक जायं।

"अजी नहीं, हम काली घटाओं से डरने वाले नहीं हैं। कल जो आपने बात शुरू की तो विश्वास कीजिए, उसके अधूरे रह जाने से मुझे रात भर नींद नहीं आई। नींद आई भी तो स्वप्न में आपकी कहानी ही दिखाई पड़ती रही......।"

राम बाबू ने बात ख़तम नहीं की थी कि सुरेश को दम्मे का दौरा पड़ा और दो ढाई मिनट तक उनकी नीचे की सांस नीचे और ऊपर की

सांस ऊपर ही रह गई। पीला चेहरा लाल हो गया। आखिर जब दम में दम आया तो उन्होंने टांगों पर गर्म चादर डाल ली और फिर कुछ क्षणों के लिये खामोशी छा गई, मानो वे अपने विचारों को एकत्र कर रहे हों। फिर दूर तक निगाह दौड़ाते हुए धीरे से बोले—"कहानी!.. हर दर्दनाक घटना अन्त में कहानी बनकर रह जाती है।"

"जी ?" राम बाबू उनकी बातें समझ नहीं सके।

सुरेश ने मुसकराकर उनकी ओर देखा और कहा—"सबसे पहले चाय आनी चाहिए। मैंने आपको फाटक पर देखते ही नौकर को चाय बानने के लिये कह दिया था।"

"चाय तो ज़रूर पियेंगे।"

सुरेश ने बरामदे से बाहर देखते हुए कहा—"....हलांकि कोई बाग़ नहीं, क्यारियाँ नहीं, फिर भी ज़मीन का यह टुकड़ा कितना सुन्दर दिखायी पड़ रहा है। अपने आप उग आने वाली हरी-भरी घास ईंटों, रोड़ों के ऊबड़-खाबड़ ढेर, कांटेदार झाड़ियाँ, पानी की बूँदों की चादर में सोई सी दीख पड़ रही हैं। इन सब की अपनी ही सुन्दरता है। अलग-अलग ......"

"जी !" राम बाबू सुरेश की आप बीती सुनने के लिए बेचैन थे जो एक दिन पहले किसी के आ जाने से अधूरी रह गई थी।

"राम बाबू !" सुरेश ने कहना शुरू किया—"शायद बहुतों के लिये यह बात असम्भव मालूम हो, लेकिन मेरे विचार में यह असम्भव नहीं कि कभी-कभी नौ जवानी की साधारण सी घटना भी समस्त जीवन पर छा जाती है। यही उमा के मामले में हुआ.. .यद्यपि मैंने उस दर्द को दबा डाला था लेकिन उसकी याद मेरे हृदय की गहराइयों में हमेशा जीवित रही। कह नहीं सकता कि कल मैंने आपको क्यों यह कहानी सुनानी शुरू कर दी।..."

"जी, जी.. .हम कल यहाँ तक पहुँचे थे जब कि श्रीमती सक्सेना ने

उमा को चिट्ठी लिखी और आपने अपने भाई साहब पर अपने मन का भेद प्रकट करने का निश्चय कर लिये।"

"ठीक...जब मैंने भाई साहब से सारी बात कह दी तो बिलकुल उम्मीद के खिलाफ़ वह मेरी सहायता करने को तैयार हो गये।"

"फिर तो आपका काम बन जाना चाहिये था।"

"ठीक है, लेकिन अगर कहीं ऐसा हो जाता तो आज आपके सामने दम्मे के मारे हुए एक ऐसे व्यक्ति की सूरत न दिखाई देती जिसका दिल इतना कमज़ोर हो चुका है कि न जाने कब उसकी गति बन्द हो जाय।"

राम बाबू बोले—"ऐसा न कहिये।"

"नहीं, आप यह न समझिये कि मैंने जान-बूझकर अपनी यह हालत बना ली है। शायद यह कर्मों का ही फल है क्योंकि जीवन में कुछ ऐसी घटनाएँ आ जाती हैं जिन पर हर सम्भव प्रयास के बावजूद क़ाबू नहीं पाया जा सकता......तो फिर हुआ यह कि उधर उमा ने अपने चाचा तक यह बात पहुँचा दी और इधर हमारे भाई साहब ने स्वयं जाकर बातचीत की। लेकिन भाई, वह ज़माना भी आज से बहुत भिन्न था। कोई भी उपाय उमा के चाचा के निर्णय को न बदल सका। वे कहते थे कि बहुत देर के बाद यह बात मुझ पर ज़ाहिर की गई है जब कि शादी में सिर्फ चार-छः दिन बाक़ी रह गये हैं। भला अब क्या हो सकता है।"

इतने में चाय आ गई। राम बाबू उदास हो गये। बोले—"तो फिर आपको दूसरी लड़की से शादी करनी पड़ी होगी?"

"जी हाँ,......फिर मैंने इस मामले में अपने आपको बिलकुल भाग्य के भरोसे पर छोड़ दिया और अपनी अनुभूतियों को मार डाला। दिल की कसक छिपाये रहा। आज आप पर यह भेद प्रकट किया है। मैं इसके लिए लाचार हो गया, भगवान जाने इसमें क्या भेद है! शायद मृत्यु निकट है इसलिये मन ने अपना बोझ उतार फेंकना उचित समझा।"

"ऐसा न कहिये"......आखिर दम्मा ही तो है। दम्मे के रोगी तो काफी आयु पाकर मरते हैं।"

"मुझे इन बातों से कोई दिलचस्पी नहीं है।"

चाय के प्याले तैयार हुए और बारिश के शोर में उनकी बात चीत चलती रही।

सुरेश ने बताया, किस तरह उसके जीवन में आनन्द की हलकी सी किरण उस समय दिखाई पड़ी जब उसके घर में एक बच्चे ने जन्म लिया।

"एक ही लड़का है न आपका?"

"जी हां...अब विलायत से डाक्टर बनकर आने वाला है। दो चार दिन में पहुँच जायगा। उसकी मां उसके बचपन ही में मर गई थी। मैंने ही उसे पाला पोसा। राम बाबू, मैंने उत्तर भारत बिलाकुल छोड़ दिया। वहां की हर याद को दिल से नोच कर फेंक दिया। उमा को न मैंने कभी ख़त लिखा न यह जानने की चेष्टा की कि वह जीवित है या मर गई।"

"और आपके भाई साहब?"

"वह तो आज से दस बरस पहले मर गये थे। भई, एक युग बीत गया। हिसाब लगाइये तो उस घटना को चौबीस वर्ष हो चुके हैं। चौथाई शताब्दी! भाई साहब की मृत्यु के बाद उनके लड़कों ने दूकान का काम सँभाल लिया था। मैं अपने हिस्से का नक़द रुपया लेकर इस तरफ़ चला आया। फिर पलट कर वहां नहीं गया। यहाँ तक कि भाई साहब की मृत्यु हो गई और मैं अफ़सोस की चिट्ठी लिखने के सिवा कुछ नहीं कर सका। काश! काश....!"

यह कहकर सुरेश चुप हो गये। वर्षा मूसलाधार हो रही थी। अंधेरा बढ़ता जा रहा था।

कई क्षण तक सन्नाटा छाया रहा। फिर सुरेश ने उखड़े-उखड़े शब्दों में कहा—"मुझे मसूरी में उमा से पहली मुलाकात अच्छी तरह याद है, जैसे कल की बात हो। ओफ़! उसके होंठ कितने ठण्डे थे। मैं उनमें कभी गर्मी पैदा न कर सका।"

सत्रह

रोते ही रोते टूट गया रिश्तए-हयात
पर आँसुओं का तार न टुटा किसी तरह

जिस दिन सुरेश का लड़का कमल बम्बई आनेवाला था, उस दिन राम बाबू उससे मिलने के लिये हवाई अड्डे पर जा पहुँचे। हवाई जहाज़ नीचे उतरा तो वे भी दूसरे लोगों के साथ आगे बढ़े।

उन्होंने कमल को पहले कभी नहीं देखा था क्योंकि तीन वर्ष से उनकी दोस्ती सुरेश से हुई थी और कमल इससे पहले का विलायत गया हुआ था। अलबत्ता उन्होंने कमल के अनेक फोटो ज़रूर देख रखे थे जो उसने विलायत से खिंचवा कर बाप को भेजे थे। इसीलिए जब कमल हवाई जहाज़ से उतरा तो राम बाबू को उसे पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

मझोला क़द, गोल, निखरे हुए रंग का चेहरा, घने बाल जिनमें सुनहरी धूल सी झलकती थी। अपने बाप की तरह उसकी आँखों में भी विचित्र सा आकर्षण था। उसकी आँखें बड़ी नहीं थी लेकिन उनमें ध्यान देने योग्य वह उदासी थी, जो हमेशा झलकती दिखायी देती थी।

राम बाबू ने बढ़ कर कमल का हाथ थाम लिया। कमल की जिज्ञासु आँखें अपने पिता को खोज रही थीं। लेकिन सुरेश का कहीं पता नहीं था। राम बाबू को देखकर उसे तनिक आश्चर्य अवश्य हुआ लेकिन

उसने अपने इस भाव को प्रकट नहीं होने दिया। इसके पहले कि वह कोई बात कहता राम बाबू ने उसका हाथ नरमी से दबाते हुए कहा—"बेटा, तुम मुझे नहीं जानते। मेरा नाम राम बाबू है।"

"जी, जी......नमस्कार। पिता जी अकसर अपने पत्रों में आपका ज़िक्र किया करते थे। कहिये मिज़ाज कैसे हैं?"

"ठीक है, जीते रहो बेटा। आओ चलें, मैं तुमको लेने आया हूँ।"

कमल ने फिर इधर उधर देखा और बोला—"पिता जी नहीं आये!"

राम बाबू ने आँख मिलाये बिना जवाब दिया—"नहीं।"

"क्या उनकी तबीयत खराब है?"

कुली ने सामान उठाकर टैक्सी पर रख दिया। कमल को अपने सवाल का कुछ जवाब नहीं मिला था। वह समझा, शायद राम बाबू ज़रा ऊँचा सुनते हैं। इसलिये टैक्सी में बैठते ही उसने फिर अपना सवाल दोहराया—"पिता जी की तबीयत ज़्यादा खराब तो नहीं है।"

इस पर राम बाबू ने निगाह उठाकर कमल की ओर देखा। राम बाबू की आँखों के कोनों की झुर्रियाँ और गहरी हो गई और कुछ क्षणों तक उनके मुँह से बात तक नहीं निकल सकी। अन्त में बड़ी कठिनाई से वे बोले—"बेटा! मुझे माफ़ कर देना। यहाँ पहुँचते ही तुमको मेरी ज़बानी बुरी खबर सुननी पड़ रही है।"

कमल के चौड़े माथे पर बल पड़ गये।

"तुम्हारे पिता जी का स्वर्गवास हो गया।"

"कब?" कमल ने लगभग चिल्लाकर पूछा।

"परसों शाम के वक्त उनका हार्ट फ़ेल हो गया।"

'ओफ़!' यह कहते कहते कमल का सिर झुक गया। राम बाबू ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया......जब टैक्सी उनके मकान के फाटक पर पहुंची तो कमल उससे उतर कर फाटक ही में खड़ा हो गया।

वह सामने बरामदे की ओर देख रहा था जहाँ उसके पिता जी बैठे रहते थे। वह लम्बे समय से दम्मे के रोगी थे। वर्षों से वे बलग़म थूक रहे थे लेकिन किसे मालूम था कि बेटे के आने से एक ही दिन पहले उनकी मृत्यु हो जायगी।

वे दोनों भारी क़दमों से मकान की ओर बढ़ रहे थे। राम बाबू भर्राये हुए स्वर में बोले—"वह रहा तख्त जिस पर सुरेश बाबू बैठे रहते थे। हमारी शायद एक भी मुलाक़ात ऐसी नहीं हुई जिसमें उन्होंने तुम्हारा ज़िक्र न किया हो। मुझे तो ऐसा लगता था कि वे तुम्हारी याद में ही जी रहे थे। वे कहते—"राम बाबू! मैंने अपनी सारी पूंजी अपने बेटे की शिक्षा पर खर्च कर दी है। जब मैं अपनी जिन्दगी पर नज़र डालता हूँ तो अपने आपको एक असफल और निराश व्यक्ति पाता हूँ। मैं अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा नहीं प्राप्त कर सका लेकिन मैंने अपने बेटे को शिक्षा दिलाने में कोई कसर नहीं उठा रखी। परमात्मा उसे जीवन के दूसरे क्षेत्रों में भी सफलता प्रदान करे।' काश, वे तुमको अपनी आँखों से देख सकते। अवश्य ही तुम इतने वर्षों में बहुत कुछ बदल गये होगे। तुम्हें देखकर उन्हें कितनी खुशी होती......"

आगे घर का पुराना नौकर खड़ा था। कमल को देखकर उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े। राम बाबू ने बढ़कर उसे टोका—"देखो! इतने दिनों के बाद कमल अपने घर आया है, रोना ठीक नहीं।"

नौकर ने अंगौछे से आँसू पोंछ डाले।

तनिक मौन के बाद कमल ने बरामदे में पड़े हुए तख्त पर बैठते हुए नौकर से कहा—"शम्भू, यह क्या हो गया?"

शम्भू फिर सिसकियां भरने लगा।

"मेरे आने तक तो उन्हें रोक रखा होता शम्भू।"

"साहब, वह बिलकुल ठीक-ठाक थे। अच्छी तरह खाते-पीते, चलते-फिरते। वही कभी खांसी का दौरा उठता तब थोड़ी देर को बेदम से हो

जाते थे। लेकिन भगवान जाने उनको क्या हो गया।"

"क्या तुम उनके पास ही थे उस समय......?"

"हां जी।"

"क्या उन्होंने किसी तकलीफ़ के बारे में कुछ बताया।"

"जी नहीं। कोई बात नहीं हुई ऐसी-वैसी। शाम को राम बाबू आये। रोज़ की तरह उन्होंने चाय पी, बातें करते रहे, हंसते-बोलते रहे। मुझसे हंसकर बोले कि अब तेरे बाबू विलायत से आनेवाले हैं। अब तो तुझे उनकी सेवा करनी होगी। मैंने कहा, मैं आप दोनों की सेवा करूंगा। इस पर वे देर तक हंसते रहे। याद है न राम बाबू! यहां तक कि हंसते-हंसते उनकी आँखों में पानी भर आया। बोले, अरे शम्भू! अब तुम उनकी ही सेवा करना। हमारा क्या है। हम तो नदी किनारे के पेड़ हैं, न जाने कब बह जायँ'.....पर कौन जानता था...किसे मालूम था...."
यह कहते कहते शम्भू की आवाज़ भर्रा गई।

आध घन्टे तक बैठे वे लोग सुरेश बाबू की ही बातें करते रहे। फिर राम बाबू ने कहा—"बेटा! तुम्हारे पिता ने जीवन में बहुत दुख पाया। लेकिन अजीब आदमी थे। वे सतयुग के पुरुष थे। न जाने कलयुग में कैसे जन्म ले लिया उन्होंने। धुन के पक्के थे। तुम सब बातें न जान सकोगे। पर मैं उनका दोस्त था। उन्होंने मुझे सब कुछ बता दिया था। अपने दिल की गहराइयों में उतरे हुए दुख उन्होंने मुझ पर प्रकट कर दिये थे। यद्यपि मैं उनकी क्या मदद कर सकता था। मैं क्या कोई भी कुछ नहीं कर सकता था। फिर भी उन्होंने इस योग्य तो समझा कि अपने मन के भेद प्रकट कर दिये.....बेटा! तुम्हारी आंखों को देखकर उनकी आंखों की याद ताज़ा हो जाती है। इनमें वही गहरी उदासी झलकती है। यह उदासी प्यारी भी लगती है लेकिन इससे मुझे डर भी महसूस होता है...परमात्मा...परमात्मा तुम्हें सदा सुखी रखे। अच्छा बेटा, अब तुम हमारे यहां चलो नाश्ता कर लो।"

कमल तख्त से उठ खड़ा हुआ और बोला—"नहीं बाबू जी, इस

समय मुझे माफ़ कर दीजिये। मेरा जी ठिकाने नहीं है।..."

राम बाबू ने तनिक हिचकिचाते हुए कहा—"बेटा! थोड़ा सा नाश्ता कर लेते तो अच्छा होता।"

"मैं आपकी बात नहीं टाल सकता। आप इतना कह रहे हैं तो शाम को हम चाय साथ पी लेगें।"

राम बाबू थोड़ी देर तक रुके रहे फिर बोले—"अच्छा बेटा! अब मैं चलता हूँ। मुझे दफ़्तर जाना है। जैसे-जैसे लोगों को तुम्हारे आने की खबर मिलेगी वैसे-वैसे वे शोक प्रकट करने के लिये आते जायँगे। लेकिन दिन में तो इक्का दुक्का लोग ही आयँगे, क्योंकि सब अपने अपने धंधे में लगे होंगे।"

"जी।"

"आज दिन में अपने पिता के सब काग़ज़ात आदि भी देख डालो। बैंक में उनका कुछ रुपया भी है। इसके अलावा उन्होंने बीमा भी करा रखा था। इन सब काग़ज़ों को छाँटकर सँभाल रखो और उचित कार्रवाई करो।.....बेटा, बड़ा दुख होता है तुम्हारी हालत देखकर। लेकिन यह दुनिया है....."

राम बाबू की आवाज़ भर्रा गई और उन्होंने एक बार फिर कमल के कन्धे पर हाथ रखा और चलते-चलते शम्भू को इशारे से समझा गये कि बाबू को कुछ खिला-पिला देना। खाली पेट रहना ठीक नहीं।

अठारह

एक जा हर्फ़े-वफ़ा लिक्खा था वह भी मिट गया।

अपने घर आये कमल को एक सप्ताह हो चुका था। पिता की अचानक मृत्यु से उसके हृदय को ज़बर्दस्त धक्का लगा था। दोनों को एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम था। एक ओर पिता के मन में यह बात जमी थी कि जो कुछ वह अपने जीवन में नहीं पा सका, वह उसका बेटा पा लेगा और इस प्रकार उसके दुखों की कुछ पूर्ति हो सकेगी। दूसरी ओर बेटे के मन में अपने पिता को अधिक से अधिक आराम पहुँचाने का इरादा था।

इन सात दिनों में उसने सारे ज़रूरी काग़ज़ात छान मारे। सिर्फ़ एक लकड़ी का छोटा बक्स अभी तक बन्द पड़ा था। ज़रूरी काग़ज़ात तो उसे बाहर मिल गये थे लेकिन उसने उस ताला लगे बक्स को खोलने का साहस नहीं किया था क्योंकि उसके ढकन पर काग़ज़ की एक चिट लगी थी जिस पर लिखा था 'Personal' अर्थात् व्यक्तिगत।

पिछले कई दिनों से वह अजब असमंजस में पड़ा था। शुरू से ही यह बक्स उसके लिये पहेली बना हुआ था। मकान के अनेक कमरों में से एक में ताला लगा था और उसकी चाभी नहीं मिलती थी। उसने शम्भू से कमरे के बारे में पूछा तो मालूम हुआ कि सुरेश बाबू स्वयं उस कमरे में बैठा करते थे और उसे कभी अन्दर जाने का संयोग नहीं हुआ था।

उसकी सफ़ाई भी शायद सुरेश बाबू स्वयं ही करते थे।

ये बातें सुनकर कमल को और अचम्भा हुआ। आखिर उससे न रहा गया और उसने कमरे का ताला तोड़ दिया। शम्भू उस समय घर पर मौजूद नहीं था। उसने इतमीनान से दरवाज़ा खोला और देहलीज़ पर खड़ा होकर कमरे का निरीक्षण करने लगा।

कमरे में कोई असाधारण बात नहीं दिखाई पड़ी। वह खाली-खाली दिखाई देता था। न फ़र्नीचर न कोई तस्वीर, न दरी न पलंग। अलबत्ता छोटी सी खिड़की के पास एक तख्त बिछा था जिस पर आदमी आराम से बैठ सकता था। तख्त के पास एक डेक्स थी। उसका ढक्कन खुला था। नीचे फर्श पर अनेक कागज़ों के पुर्जे पड़े थे। लगता था कि उन्हें कुछ ही दिन पहले फाड़ा गया था।

इसके अतिरिक्त और कोई चीज़ नहीं दिखी। कमल को बड़ा आश्चर्य था कि आखिर ऐसी कौन सी रहस्यपूर्ण चीज़ थी जिसके छिपाने के लिये उसके पिता ने कमरे को इतनी सावधानी से बन्द कर रखा था। चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर वह लौटा। उसने सोचा, हो सकता है कि इस कमरे से पिता जी को कोई हार्दिक लगाव हो। जब वह दरवाज़े से निकलकर फिर किवाड़ बन्द करने लगा तो उसकी नज़र तख्त के नीचे गयी। उसे कुछ सन्देह हुआ तो फिर अन्दर गया। तख्त के नीचे झांका तो वही लकड़ी का बक्स पड़ा पाया।

बक्स भी रहस्यपूर्ण मालूम होता था। इसने उतने दिन तक उसे खोलने का साहस नहीं किया लेकिन अब सवाल यह था कि उसे इस तरह बंद रहने दिया जाय या नष्ट कर दिया जाय। दोनों बातें अनुचित सी लगती थीं। अन्त में काफी सोच विचार के बाद उसने बक्स को खोलने का निश्चय कर लिया।

एक दिन सुबह की चाय पीकर वह फिर उसी छोटे कमरे में पहुँचा। अन्दर से दरवाजा बन्द करके वह तख्त पर बैठ गया। उसने बक्स का

अठारह

एक जा हर्फ़े-वफ़ा लिक्खा था वह भी मिट गया।

अपने घर आये कमल को एक सप्ताह हो चुका था। पिता की अचानक मृत्यु से उसके हृदय को ज़बर्दस्त धक्का लगा था। दोनों को एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम था। एक ओर पिता के मन में यह बात जमी थी कि जो कुछ वह अपने जीवन में नहीं पा सका, वह उसका बेटा पा लेगा और इस प्रकार उसके दुखों की कुछ पूर्ति हो सकेगी। दूसरी ओर बेटे के मन में अपने पिता को अधिक से अधिक आराम पहुँचाने का इरादा था।

इन सात दिनों में उसने सारे ज़रूरी काग़ज़ात छान मारे। सिर्फ एक लकड़ी का छोटा बक्स अभी तक बन्द पड़ा था। ज़रूरी काग़ज़ात तो उसे बाहर मिल गये थे लेकिन उसने उस ताला लगे बक्स को खोलने का साहस नहीं किया था क्योंकि उसके ढक्कन पर काग़ज़ की एक चिट लगी थी जिस पर लिखा था 'Personal' अर्थात् व्यक्तिगत।

पिछले कई दिनों से वह अजब असमंजस में पड़ा था। शुरू से ही यह बक्स उसके लिये पहेली बना हुआ था। मकान के अनेक कमरों में से एक में ताला लगा था और उसकी चाभी नहीं मिलती थी। उसने शम्भू से कमरे के बारे में पूछा तो मालूम हुआ कि सुरेश बाबू स्वयं उस कमरे में बैठा करते थे और उसे कभी अन्दर जाने का संयोग नहीं हुआ था।

उसकी सफ़ाई भी शायद सुरेश बाबू स्वयं ही करते थे।

ये बातें सुनकर कमल को और अचम्भा हुआ। आखिर उससे न रहा गया और उसने कमरे का ताला तोड़ दिया। शम्भू उस समय घर पर मौजूद नहीं था। उसने इतमीनान से दरवाज़ा खोला और देहलीज़ पर खड़ा होकर कमरे का निरीक्षण करने लगा।

कमरे में कोई असाधारण बात नहीं दिखाई पड़ी। वह खाली-खाली दिखाई देता था। न फ़र्नीचर न कोई तस्वीर, न दरी न पलंग। अलबत्ता छोटी सी खिड़की के पास एक तख्त बिछा था जिस पर आदमी आराम से बैठ सकता था। तख्त के पास एक डेक्स थी। उसका ढक्कन खुला था। नीचे फ़र्श पर अनेक कागज़ों के पुर्जे पड़े थे। लगता था कि उन्हें कुछ ही दिन पहले फाड़ा गया था।

इसके अतिरिक्त और कोई चीज़ नहीं दिखी। कमल को बड़ा आश्चर्य था कि आखिर ऐसी कौन सी रहस्यपूर्ण चीज़ थी जिसके छिपाने के लिये उसके पिता ने कमरे को इतनी सावधानी से बन्द कर रखा था। चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर वह लौटा। उसने सोचा, हो सकता है कि इस कमरे से पिता जी को कोई हार्दिक लगाव हो। जब वह दरवाज़े से निकलकर फिर किवाड़ बन्द करने लगा तो उसकी नज़र तख्त के नीचे गयी। उसे कुछ सन्देह हुआ तो फिर अन्दर गया। तख्त के नीचे झांका तो वही लकड़ी का बकस पड़ा पाया।

बक्स भी रहस्यपूर्ण मालूम होता था। इसने उतने दिन तक उसे खोलने का साहस नहीं किया लेकिन अब सवाल यह था कि उसे इस तरह बंद रहने दिया जाय या नष्ट कर दिया जाय। दोनों बातें अनुचित सी लगती थीं। अन्त में काफी सोच विचार के बाद उसने बक्स को खोलने का निश्चय कर लिया।

एक दिन सुबह की चाय पीकर वह फिर उसी छोटे कमरे में पहुँचा। अन्दर से दरवाजा बन्द करके वह तख्त पर बैठ गया। उसने बक्स का

ताला तोड़ कर धड़कते हुए हृदय से ढक्कन उठाया तो देखा, कुछ सादे लिफ़ाफ़े और दो तीन राइटिंग पैड पड़े थे जिनमें से हर एक में से कुछ पन्ने फाड़ लिये गये थे। उसके अतिरिक्त पिनें, निब और इसी प्रकार की कुछ और चीज़ें पड़ी थीं। यह बात और भी रहस्यपूर्ण लगी। कमल दो उँगलियां और अगूँठे से अपनी गोल ठोड़ी खुजाने लगा। इसी बीच में कुछ कोरे कागज़ों के पुलन्दे के नीचे उसे बड़े आकार की एक पुरानी सी नोट बुक दिखाई पड़ी। उसने उसे खोला तो जिल्द के भीतर की ओर लिखा था:—

"..! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ...." कमल ने मन ही मन में दोहराया, "लेकिन किसे ?'

उसने ध्यान से देखा। बहुत कोशिश की लेकिन नाम नहीं पढ़ा जा सका। वहां से जिल्द का कोना मुड़-तुड़ गया था और कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या नाम लिखा है। इतना पढ़ लेने के बाद कमल को उस रहस्य का कुछ कुछ अनुभव हो गया। उसने पहले छिछ-लती सी दृष्टि से नोट बुक के पन्नों को उलट-पलट कर देखा। एक जगह लिखा था—"तुम कितनी दूर हो!"

दूसरी जगह लिखा था—"मैं क्या हूँ ?.... सिर्फ तुम्हारी याद।"

एक और जगह लिखा था—"कभी-कभी मैं बहुत हैरान हो जाता हूँ कि इतने कष्ट और इतने दर्द में डूब कर मैं जिन्दा कैसे रह रहा हूँ।'

एक और पृष्ठ पर लिखा था—'

"तुम्हारी याद न मरने दे न जीने दे।'

सारांश यह कि इसी प्रकार प्रत्येक पृष्ठ पर कुछ छोटे और कुछ लम्बे वाक्य लिखे थे जिन्हें शायद वह पढ़ डालता कि इतने में दरवाज़ा

खटखटाने की आवाज़ सुनाई पड़ी।

"क्या है शम्भू ?"

"राम बाबू आये हैं। बाहर बैठे हैं।"

"कहो, आते हैं।"

नोटबुक को संभालकर वह बाहर निकला तो देखा कि शम्भू अभी बाहर खड़ा था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसने बाहर जाकर राम बाबू तक उसका जवाब क्यों नहीं पहुंचाया। और जब उसकी आँखों से शम्भू की आँखों मिली तो उसने देखा कि शम्भू के चेहरे पर अजीब उदासी झलक रही है उसने कहा—"अरे शम्भू! तुम यहाँ खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो... जाकर रामबाबू से कहा क्यों नहीं कि मैं आ रहा हूँ"

तनिक रुक कर शम्भू ने कहा—"कमल बेटा ! यह तुमको क्या हो गया ! पहले तुम्हारे पिता जी इस कमरे में घुसे रहते थे अब तुम घुसे रहते हो। आखिर इसमें क्या भेद है ?"

कमल ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर हँसते हुए कहा—"अरे ! भेद वेद कुछ नहीं। जाओ कमरा साफ कर दो। वहाँ कुछ है भी। मेरे विचार से पिता जी वहाँ चुपचाप बैठ कर पूजा करते रहे होंगे।"

यह कहकर वह बाहर निकला और राम बाबू को देख कर नमस्कार किया।

"खुश रहो बेटा !" राम बाबू को जवाब दिया।"

"माफ कीजिये, मुझे कुछ देर हो गई।"

"कोई हर्ज नहीं बेटा। आज इतवार है। मुझे दफ्तर तो जाना नहीं है। मैं तो स्वयं अधिक से अधिक समय तुम्हारे साथ बिताना चाहता हूँ।'

आपकी कृपा है। मुझे आशा है कि जिस समय मेरा संदेश आपको मिला होगा उस समय आपने चाय नहीं पी होगी।"

"नहीं। और फिर तुमने लिखा था कि मेरे साथ चाय पीजिये

ताला तोड़ कर धड़कते हुए हृदय से ढक्कन उठाया तो देखा, कुछ सादे लिफ़ाफ़े और दो तीन राइटिंग पैड पड़े थे जिनमें से हर एक में से कुछ पन्ने फाड़ लिये गये थे। उसके अतिरिक्त पिनें, निब और इसी प्रकार की कुछ और चीज़ें पड़ी थीं। यह बात और भी रहस्यपूर्ण लगी। कमल दो उँगलियों और अगूँठे से अपनी गोल ढोड़ी खुजाने लगा। इसी बीच में कुछ कोरे कागज़ों के पुलन्दे के नीचे उसे बड़े आकार की एक पुरानी सी नोट बुक दिखाई पड़ी। उसने उसे खोला तो जिल्द के भीतर की ओर लिखा था:—

"..! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ...." कमल ने मन ही मन में दोहराया, "लेकिन किसे ?"

उसने ध्यान से देखा। बहुत कोशिश की लेकिन नाम नहीं पढ़ा जा सका। वहां से जिल्द का कोना मुड़-तुड़ गया था और कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या नाम लिखा है। इतना पढ़ लेने के बाद कमल को उस रहस्य का कुछ कुछ अनुभव हो गया। उसने पहले छिछलती सी दृष्टि से नोट बुक के पन्नों को उलट-पलट कर देखा। एक जगह लिखा था—"तुम कितनी दूर हो !"

दूसरी जगह लिखा था—"मैं क्या हूँ ?... सिर्फ तुम्हारी याद।"

एक और जगह लिखा था—"कभी-कभी मैं बहुत हैरान हो जाता हूँ कि इतने कष्ट और इतने दर्द में डूब कर मैं जिन्दा कैसे रह रहा हूँ।"

एक और पृष्ठ पर लिखा था—"

"तुम्हारी याद न मरने दे न जीने दे।"

सारांश यह कि इसी प्रकार प्रत्येक पृष्ठ पर कुछ छोटे और कुछ लम्बे वाक्य लिखे थे जिन्हें शायद वह पढ़ डालता कि इतने में दरवाज़ा

खटखटाने की आवाज़ सुनाई पड़ी।

"क्या है शम्भू ?"

"राम बाबू आये हैं। बाहर बैठे हैं।"

"कहो, आते हैं।"

नोटबुक को संभालकर वह बाहर निकला तो देखा कि शम्भू अभी बाहर खड़ा था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसने बाहर जाकर राम बाबू तक उसका जवाब क्यों नहीं पहुंचाया। और जब उसकी आँखों से शम्भू की आँखों मिली तो उसने देखा कि शम्भू के चेहरे पर अजीब उदासी झलक रही है उसने कहा—"अरे शम्भू! तुम यहाँ खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो... जाकर रामबाबू से कहा क्यों नहीं कि मैं आ रहा हूँ"

तनिक रुक कर शम्भू ने कहा—"कमल बेटा? यह तुमको क्या हो गया? पहले तुम्हारे पिता जी इस कमरे में घुसे रहते थे अब तुम घुसे रहते हो। आखिर इसमें क्या भेद है ?"

कमल ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर हँसते हुए कहा—"अरे! भेद वेद कुछ नहीं। जाओ कमरा साफ कर दो। वहाँ कुछ है भी। मेरे विचार से पिता जी वहाँ चुपचाप बैठ कर पूजा करते रहे होंगे।"

यह कहकर वह बाहर निकला और राम बाबू को देख कर नमस्कार किया।

"खुश रहो बेटा!" राम बाबू को जवाब दिया।"

"माफ कीजिये, मुझे कुछ देर हो गई।"

"कोई हर्ज नहीं बेटा। आज इतवार है। मुझे दफ्तर तो जाना नहीं है। मैं तो स्वयं अधिक से अधिक समय तुम्हारे साथ बिताना चाहता हूँ।'

आपकी कृपा है। मुझे आशा है कि जिस समय मेरा संदेश आपको मिला होगा उस समय आपने चाय नहीं पी होगी।"

"नहीं। और फिर तुमने लिखा था कि मेरे साथ चाय पीजिये

फिर भला इससे बढ़कर खुशी की बात क्या हो सकती है।"

"शम्भू बस चाय लेकर आता ही होगा। आप इतमीनान से ठिये !"

"मैं बड़े आराम से हूँ ''''हाँ बेटा, तुमने जो लिखा था कि रूरी काम भी है तो पहले वह जरूरी काम बता दो नहीं तो मुझे चाय पीने मजा नहीं आयेगा।"

"ओह '''', बात यह है कि मैं आपसे एक सलाह लेना चाहता था।"

"सलाह ? हाँ, बेटा, बोलो, मैं हर तरह से हाजिर हूँ।"

"बात यह है कि मैं यह मकान बेच डालना चाहता हूँ।"

राम बाबू आश्चर्य से पीछे की तरफ़ हट गये।

"क्या कहा, मकान बेचना चाहते हो ?"

"जी।"

"तो क्या तुम यहां—अपने मकान में नहीं रहोगे ?"

"जी नहीं..मैं यहां से चला जाऊंगा—हमेशा के लिये।"

राम बाबू ने कमल के नौजवान चेहरे और उसकी अपने पिता से इतनी मिलती-जुलती हुई आँखों की ओर देखा और बोले—"बेटा ! शायद तुम्हें विश्वास न आये, मुझे तुमसे बड़ा स्नेह हो गया है। तुम मेरे दोस्त की अमानत हो। मुझे तुम्हारे बारे में डर लगता है। तुम्हारी आंखों में वहीं तुम्हारे बाप वाली निराशा है। एक गहरी बहुत गहरी उदासी न में भी झलकती थी...."

"ठीक है। मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ। लेकिन पिता जी के ना मैं इस घर में बिलकुल नहीं रह सकता। मैं अवश्य चला जाऊंगा। इस बात का बिल्कुल निश्चय कर लिया है।"

उन्नीस

यह परी चेहरा लोग कैसे हैं
ग़मज़ा-ओ-इश्वा-ओ-अदा क्या है

गुड़गाँव दिल्ली के निकट एक क़स्बे का नाम है। यहीं पर कमल के मित्र प्रकाश के पिता तम्बाकू का काम करते थे। वास्तव में यह उनका खानदानी व्यवसाय है। प्रकाश के दादा और पिता आदि उतना अधिक रुपया कमाने पर भी कुर्ते और धोती से आगे नहीं बढ़े। लेकिन ज़माने की हवा के साथ ही उनकी सन्तान के स्वभाव में परिवर्तन हुआ। प्रकाश अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ा था। उसी के कारण घर में नई रोशनी ने स्थान पाया। बूढ़े दादा और पिता ने पहले तो इसका कड़ा विरोध किया लेकिन जब प्रकाश दूसरे महायुद्ध में फ़ौज में भरती हो गया और फ़ौजी वर्दी डाटे कैप्टेन बनकर आया तब उस समय उसके पिता, जिन्हें सब लाला कहते थे तम्बाकू से दुर्गन्धित बही खाता खोले बैठे थे। जब अचानक एक वर्दीधारी और रोबदार अफ़सर को उन्होंने दूकान के सामने खड़ा पाया तो वे घबरा गये कि अवश्य ही उनकी चोरबाज़ारी का पोल खुल गया है और उनकी गिरफ़्तारी के वारन्ट आ गये हैं। उनके हाथ-पाँव फूल गये। लेकिन जब अफ़सर ने हाथ जोड़कर कहा—'लाला जी प्रणाम।' तो लाला उछलकर ज़मीन से एक फुट ऊँचे हो गये और फिर हमेशा के लिये वहीं टंगकर रह गये। इसके बाद प्रकाश की हर

फिर भला इससे बढ़कर खुशी की बात क्या हो सकती है।"

"शम्भू बस चाय लेकर आता ही होगा। आप इतमीनान से ठिये !"

"मैं बड़े आराम से हूँ····हाँ बेटा, तुमने जो लिखा था कि रूरी काम भी है तो पहले वह जरूरी काम बता दो नहीं तो मुझे चाय पीने मजा नहीं आयेगा।"

"ओह····बात यह है कि मैं अपसे एक सलाह लेना चाहता था।"

"सलाह ? हाँ, बेटा, बोलो, मै हर तरह से हाजिर हूँ।"

"बात यह है कि मैं यह मकान बेच डालना चाहता हूँ।"

राम बाबू अश्चर्य से पीछे की तरफ़ हट गये।

"क्या कहा, मकान बेचना चाहते हो ?"

"जी।"

"तो क्या तुम यहां—अपने मकान में नहीं रहोगे ?"

"जी नहीं..मैं यहां से चला जाऊंगा—हमेशा के लिये।"

राम बाबू ने कमल के नौजवान चेहरे और उसकी अपने पिता से इतनी मिलती-जुलती हुई आँखों की ओर देखा और बोले—"बेटा ! शायद तुम्हें विश्वास न आये, मुझे तुमसे बड़ा स्नेह हो गया है। तुम मेरे दोस्त की अमानत हो। मुझे तुम्हारे बारे में डर लगता है। तुम्हारी आंखों में वहीं तुम्हारे बाप वाली निराशा है। एक गहरी बहुत गहरी उदासी न में भी झलकती थी...."

"ठीक है। मैं आपका हृदय से कृतज्ञ हूँ। लेकिन पिता जी के ना मैं इस घर में बिलकुल नहीं रह सकता। मैं अवश्य चला जाऊंगा। इस बात का बिल्कुल निश्चय कर लिया है।"

उन्नीस

यह परी चेहरा लोग कैसे हैं
ग़मज़ा-ओ-इश्वा-ओ-अदा क्या है

गुड़गाँव दिल्ली के निकट एक क़स्बे का नाम है। यहीं पर कमल के मित्र प्रकाश के पिता तम्बाकू का काम करते थे। वास्तव में यह उनका खानदानी व्यवसाय है। प्रकाश के दादा और पिता आदि उतना अधिक रुपया कमाने पर भी कुर्ते और धोती से आगे नहीं बढ़े। लेकिन ज़माने की हवा के साथ ही उनकी सन्तान के स्वभाव में परिवर्तन हुआ। प्रकाश अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ा था। उसी के कारण घर में नई रोशनी ने स्थान पाया। बूढ़े दादा और पिता ने पहले तो इसका कड़ा विरोध किया लेकिन जब प्रकाश दूसरे महायुद्ध में फ़ौज में भरती हो गया और फ़ौजी वर्दी डाटे कैप्टेन बनकर आया तब उस समय उसके पिता, जिन्हें सब लाला कहते थे तम्बाकू से दुर्गन्धित बही खाता खोले बैठे थे। जब अचानक एक वर्दीधारी और रोबदार अफ़सर को उन्होंने दूकान के सामने खड़ा पाया तो वे घबरा गये कि अवश्य ही उनकी चोरबाज़ारी का पोल खुल गया है और उनकी गिरफ़्तारी के वारन्ट आ गये हैं। उनके हाथ-पाँव फूल गये। लेकिन जब अफसर ने हाथ जोड़कर कहा—'लाला जी प्रणाम।' तो लाला उछलकर ज़मीन से एक फुट ऊँचे हो गये और फिर हमेशा के लिये वहीं टंगकर रह गये। इसके बाद प्रकाश की हर

फर्मायश मानो शाही फर्मान था । यानी अगर प्रकाश कहता कि चाय ट्रे में सजकर आनी चाहिये तो बड़े या छोटे लाला को यह नहीं महसूस होता था कि उनका पौत्र या पुत्र बोल रहा है बल्कि उन्हें ऐसा लगता था मानो स्वयं सरकार बोल रही है । जैसे एसेम्बली में पास होने वाला कानून कि सर्व साधारण को नोटिस द्वारा सूचित किया जाता है कि हर एक देशवासी चाहे बच्चा हो या बूढ़ा, स्त्री हो या पुरुष उसे चाय ट्रे में लगानी और प्याले में पीनी चाहिये । जो इस कानून को भंग करेगा उसे पुलिस के हवाले...इत्यादि, इत्यादि ।

प्रकाश के आने से लाला जी के घर में एक क्रान्ति सी आ गई । ट्रे के बिना किसी को चाय अच्छी न लगती । भोजन के बन्द 'फ्रूट साल्ट' लिये बिना किसी का भोजन न पचता था । मामूली सिर-दर्द या जुक़ाम का सन्देह होने पर एस्प्रो, सारीडान आदि इस्तेमाल होने लगा । काले नमक का चूरन और अमृतांजन घर से एक सिरे से ग़ायब ही हो गये ।

कैप्टेन प्रकाश घर में कमाकर कुछ नहीं लाते थे बल्कि छुट्टी पर आते तो उल्टा घर से ही रुपया मांगते जो उन्हें बड़ी खुशी से दे दिया जाता । रुपये की वहां कमी ही क्या थी । अब तो लाला की यह इच्छा भी नहीं थी कि बेटा उन्हें कमाकर दे इतना अवश्य था कि जब कैप्टन बेटा घर आता तो लाला उसको साथ लेकर बाज़ार का एकाध चक्कर ज़रूर लगाते । बाज़ार जाते तो उनकी सूरत देखने के क़ाबिल होती । आगे-आगे उनकी तोंद, पीछे-पीछे वे स्वयं, बग़ल में वर्दी पहने हुए बेटा । लाला की बाछें खिली रहतीं और दोनों गालों की गोलाइयां और उभर आतीं मानो उन्होंने गालों के अन्दर मोतीचूर के लड्डू दाब रखे हों ।

बेटे के इशारे पर उन्होंने क़स्बे से बाहर एक कोठीनुमा मकान बनवा डाला । उसके इर्द गिर्द काफ़ी अहाता, फूलों की क्यारियों और खेल के लॉन के लिये छोड़ दिया गया । उसका नाम 'प्रकाश विला' रखा गया

उधर गुड़गाँव के निकट कुछ फौजियों के क्वार्टर भी तैयार हो गये। वहाँ से भी कुछ फ़ौजी अफसर उनके यहाँ आने-जाने लगे। प्रकाश की ग़ैरहाज़िरी में उसका छोटा भाई एम. मोने, पढ़ने लिखने में नालायक लेकिन 'यस', 'नो', 'सोरी', कहने और सूट पहनने में बड़ा उस्ताद था। उसने अपनी छोटी बहनों, माला और कला, जिनकी आयु क्रमशः चौदह और सोलह वर्ष थी, को भी इस कला में निपुण बना दिया था। रहे प्रकाश के पिता और उनके पिता अर्थात् छोटे लाला और बड़े लाला तो उनके कपड़ों और शरीर से तम्बाकू की गन्ध ही नहीं जाती थी। इसलिए वे तो ज्यों के त्यों रहे। अलबत्ता पाँच बच्चों की मां यानी ललाइन ने फुरहरी ली और सब की महफ़िल में ताली मारकर हँसना सीख गईं। शाम होती तो उधर लाला दूकान की अँधेरी कोठरी में, जहाँ दोपहर के समय में भी हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था, दिये की लौ में बही खातों से आँखें फोड़ते, इधर ललाइन बड़ी शानदार बतख की तरह सज-धजकर लॉन में आ बैठतीं। एम. मोने के फ़ौजी या ग़ैर फौजी लेकिन प्रतिष्ठित मित्र भी आ निकलते। चाय या काफ़ी का दौर चलता, बैड मेएटन खेला जाता और ऐसे मौक़े पर यदि कहीं से लाला आ निकलते तो वे सहमकर सबसे अलग बैठ जाते। इस डर से कि कहीं सभ्यता के विरुद्ध उनसे कोई बात हो जाय और लोग मजाक़ उड़ायें कि बेटा कैप्टेन हो गया और बाप को चाय के प्याले में चम्मच हिलाना भी नहीं आता।

एम. मोने के नाम का रहस्य यह था कि ललाइन उसे मेरा मुन्ना कहा करती थीं। 'मुन्ना' का उसने मोने बना दिया और 'मेरा' उड़ाकर उसकी जगह केवल एम रहने दिया। उन सब में व्यक्तित्व तो बड़े भाई का अच्छा था बाकी एम. मोने बिलकुल फ़ाख्ता की दुम और मिस माला और कला बिलकुल झांवां थीं। रहीं ललाइन तो उनकी हर कल ढीली, हर चूल चर्रखचूं। लेकिन उन सब पर ऐसा रोग़न फिर गया था कि असल और नकल में तमीज़ नहीं हो सकती थी। बॉयरन और शेक्सपियर के बात-बात में ठीक अवसरों पर हवाले दिये जाते थे। इसमें सन्देह नहीं

फर्मायश मानो शाही फर्मान था । यानी अगर प्रकाश कहता कि चाय ट्रे में सजकर आनी चाहिये तो बड़े या छोटे लाला को यह नहीं महसूस होता था कि उनका पौत्र या पुत्र बोल रहा है बल्कि उन्हें ऐसा लगता था मानो स्वयं सरकार बोल रही है। जैसे एसेम्बली में पास होने वाला कानून कि सर्व साधारण को नोटिस द्वारा सूचित किया जाता है कि हर एक देशवासी चाहे बच्चा हो या बूढ़ा, स्त्री हो या पुरुष उसे चाय ट्रे में लगानी और प्याले में पीनी चाहिये । जो इस कानून को भंग करेगा उसे पुलिस के हवाले...इत्यादि, इत्यादि ।

प्रकाश के आने से लाला जी के घर में एक क्रान्ति सी आ गई। ट्रे के बिना किसी को चाय अच्छी न लगती । भोजन के बन्द 'फ्रूट साल्ट' लिये बिना किसी का भोजन न पचता था । मामूली सिर-दर्द या जुकाम का सन्देह होने पर एस्प्रो, सारीडान आदि इस्तेमाल होने लगा । काले नमक का चूरन और अमृतांजन घर से एक सिरे से ग़ायब ही हो गये ।

कैप्टेन प्रकाश घर में कमाकर कुछ नहीं लाते थे बल्कि छुट्टी पर आते तो उल्टा घर से ही रुपया मांगते जो उन्हें बड़ी खुशी से दे दिया जाता । रुपये की वहां कमी ही क्या थी। अब तो लाला की यह इच्छा भी नहीं थी कि बेटा उन्हें कमाकर दे इतना अवश्य था कि जब कैप्टन बेटा घर आता तो लाला उसको साथ लेकर बाज़ार का एकाध चक्कर ज़रूर लगाते । बाज़ार जाते तो उनकी सूरत देखने के क़ाबिल होती । आगे-आगे उनकी तोंद, पीछे-पीछे वे स्वयं, बग़ल में वर्दी पहने हुए बेटा । लाला की बाछें खिली रहतीं और दोनों गालों की गोलाइयां और उभर आतीं मानो उन्होंने गालों के अन्दर मोतीचूर के लड्डू दाब रखे हों ।

बेटे के इशारे पर उन्होंने क़स्बे से बाहर एक कोठीनुमा मकान बनवा डाला । उसके इर्द गिर्द काफ़ी अहाता, फूलों की क्यारियों और खेल के लॉन के लिये छोड़ दिया गया । उसका नाम 'प्रकाश विला' रखा गया

उधर गुड़गाँव के निकट कुछ फौजियों के क्वार्टर भी तैयार हो गये। वहाँ से भी कुछ फ़ौजी अफसर उनके यहाँ आने-जाने लगे। प्रकाश की ग़ैरहाज़िरी में उसका छोटा भाई एम. मोने, पढ़ने लिखने में नालायक लेकिन 'यस', 'नो', 'सोरी', कहने और सूट पहनने में बड़ा उस्ताद था। उसने अपनी छोटी बहनों, माला और कला, जिनकी आयु क्रमशः चौदह और सोलह वर्ष थी, को भी इस कला में निपुण बना दिया था। रहे प्रकाश के पिता और उनके पिता अर्थात् छोटे लाला और बड़े लाला तो उनके कपड़ों और शरीर से तम्बाकू की गन्ध ही नहीं जाती थी। इसलिए वे तो ज्यों के त्यों रहे। अलबत्ता पाँच बच्चों की मां यानी ललाइन ने फ़ुरहरी ली और सब की महफ़िल में ताली मारकर हँसना सीख गईं। शाम होती तो उधर लाला दूकान की अँधेरी कोठरी में, जहाँ दोपहर के समय में भी हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था, दिये की लौ में बही खातों से आँखें फोड़ते, इधर ललाइन बड़ी शानदार बतख की तरह सज-धजकर लॉन में आ बैठतीं। एम. मोने के फ़ौजी या ग़ैर फौजी लेकिन प्रतिष्ठित मित्र भी आ निकलते। चाय या काफ़ी का दौर चलता, बैड मिण्टन खेला जाता और ऐसे मौक़े पर यदि कहीं से लाला आ निकलते तो वे सहमकर सबसे अलग बैठ जाते। इस डर से कि कहीं सभ्यता के विरुद्ध उनसे कोई बात हो जाय और लोग मजाक़ उड़ायें कि बेटा कैप्टेन हो गया और बाप को चाय के प्याले में चम्मच हिलाना भी नहीं आता।

एम. मोने के नाम का रहस्य यह था कि ललाइन उसे मेरा मुन्ना कहा करती थीं। 'मुन्ना' का उसने मोने बना दिया और 'मेरा' उड़ाकर उसकी जगह केवल एम रहने दिया। उन सब में व्यक्तित्व तो बड़े भाई का अच्छा था बाकी एम. मोने बिलकुल फ़ाख्ता की दुम और मिस माला और कला बिलकुल झांवां थीं। रहीं ललाइन तो उनकी हर कल ढीली, हर चूल चरखचूं। लेकिन उन सब पर ऐसा रोग़न फिर गया था कि असल और नकल में तमीज़ नहीं हो सकती थी। बॉयरन और शेक्सपियर के बात-बात में ठीक अवसरों पर हवाले दिये जाते थे। इसमें सन्देह नहीं

कि वे सच्चे दिल से नई सभ्यता को अपनाना चाहते थे और इसमें बड़ी हद तक सफल भी हो रहे थे।

आजकल प्रकाश आया हुआ था।

जिन दिनों प्रकाश घर पर होता नौजवानों के पौबारह होते। वे बात-बात में बड़ों को टोकते—"ओ ममी, कांटा दायें हाथ में नहीं बायें हाथ में रखा जाता है।"

मज़ा यह था कि बच्चे लाला को भी 'डैडी' कहते। लाला फूले न समाते। एकान्त में वे आइने के सामने खड़े होकर घूर-घूर कर अपनी सूरत देखते और फिर अचानक मुसकराकर कहते—"डैडी!" और फिर स्वयं ही अपने-आप से लिपट जाते।

अब की प्रकाश आया तो एक नया संदेशा लाया यानी उसका एक पुराना दोस्त कमल उनके यहाँ आ रहा था।

उसने घरवालों के सामने मेज़ पर बैठते हुए ऐसे बोलना शुरू किया मानो वह स्वयं युनिवर्सिटी का प्रोफेसर हो और बाकी लोग उसके अनुभव हीन शिष्य।

"बेचारे कमल के 'डैडी' मर गये। उसने मुझे चिट्ठी लिखी। मैंने कण्डोलेंस (शोक) का खत लिखा तो यह राय दी कि भाई अब वहाँ अकेले क्या करोगे....."

ललाइन बोलीं—"तो उसकी माता जी भी जीवित नहीं हैं.....?"

इस पर एम० मोने ने टोका—"ममी कहिए न ममी। माता जी क्या होता है?"

ललाइन ने अपनी भूल स्वीकार की—"हाँ, ममी....।"

प्रकाश ने जवाब दिया—"उसकी ममी तो कभी की मर चुकी हैं।"

यह सुनकर ललाइन के बदन में झुरझुरी सी उत्पन्न हुई और उन्होंने भयभीत दृष्टि से बच्चों के डैडी की ओर देखा। डैडी ऐसे गहरे भावों को समझने में असमर्थ थे अतः वे बहुत शर्माये।

माला ने पूछा—"क्या उनकी शादी भी नहीं हुई ?"

"नहीं।"

कला ने पूछा—"मंगनी ?"

"नहीं।"

इस पर दोनों बहनों को अपनी-अपनी सीटें बड़ी गर्म मालूम हुईं और वे उठकर दूसरी कुर्सियों पर बैठ गईं।

मम मोने ने कुछ पूछना ज़रूरी समझा—"उनकी सूरत कैसी है ?"

"हैण्डसम (सुन्दर)।"

फिर तनिक रुककर प्रकाश ने कहा—"लेकिन यह सब को मालूम होना चाहिये कि वह छः साल विलायत में रहने के बाद लौटा है।"

अब सब लोग अवाक् रह गये, मानो बहुत कड़ी परीक्षा का सामना होने वाला हो।

बोसे

ज़बाँ पै बारे खुदाया ये किसका नाम आया
कि मेरे नुत्क़ ने बोसे मेरी ज़बाँ के लिये

प्रकाश दो महीने की छुट्टी पर घर आया हुआ था। एक तो उसी के कारण बड़ी रौनक थी दूसरे एक 'विलायत-पलट' मनुष्य यानी कमल उनके घर आने वाला था इस लिये वहाँ और चहल-पहल हो गई थी।

उन्हें कमल का पत्र मिल चुका था कि उसने बम्बई को छोड़ने का निश्चय कर लिया है। कुछ मामले तय करने बाकी थे जिनके बाद वह तुरन्त उनके पास चला आयेगा, और तार द्वारा अपने आने की सूचना भी दे देगा।

एक शाम को जब वे लॉन पर बैठे चाय पी रहे थे, कुछ बाहर के लोग भी जमा थे तब यम० मोने एक दम उछल पड़ा—"ओह! टेलीग्राम, टेलीग्राम !"

उसने फाटक से तार घर के चपरासी को देख लिया था। यह टेलीग्राम भी उन्होंने एक नया शब्द सीखा था। उनके घर तार कभी नहीं आते, सिवाय वर्ष में एक बार के, जब प्रकाश को घर पहुँचना होता है।

भाई को चिल्लाते देख कर माला और कला के मुँह से भी एक दम निकल गया— 'टेलीग्राम, ! टेलीग्राम !!"

यह भी जैसे मानी हुई बात थी कि यदि टेलीग्राम आयेगा तो कमल ही का आयेगा। वैसे सरकार की ओर से प्रकाश के नाम भी टेलीग्राम आने की सम्भावना रहती थी लेकिन सौभाग्य से उस समय उन्हें निराशा नहीं हुई !

प्रकाश ने अत्यधिक गम्भीरता और रोब के साथ दस्तख़त करके तार खोला। यद्यपि सब व्याकुल हो रहे थे लेकिन प्रकाश के तौर तरीकों की पूरी पूरी नक़ल करना ज़रूरी था। अतएव वे सब भी चुपचाप गम्भीर मुद्रा बनाए बैठे थे। प्रकाश को न जाने तार पढ़ने में इतनी देर क्यों लग रही थी।

आख़िर प्रकाश ने मुँह खोला—"मिस्टर कमल आ रहे हैं।"

"मिस्टर कमल आ रहे हैं !"

सभों ने एक स्वर से पूछा। यद्यपि उन्हें विश्वास था कि कमल ही का तार है।

प्रकाश ने सबको बड़ी गम्भीर दृष्टि से देखा फिर बोला—"कल सुबह आठ बजे......"

अब सबने एक बार फिर नारा लगाया—"मिस्टर कमल आ रहे हैं। मिस्टर कमल आ रहे हैं।"

एम० मोने तो नाचने लगा।

इस तार के बाद घर के किसी आदमी के लिये आराम से बैठना मुश्किल हो गया। बल्कि कमल के आगमन की बात के सिवा वे कुछ और सोच ही नहीं सकते थे। रात के खाने पर बीसों प्रकार के सवाल प्रकाश से पूछे गये और प्रकाश ने हर सवाल का जवाब बड़ी तफ़सील से दिया और अन्त में उसने भाई बहनों की ओर बड़े ग़ौर से देखा ! अपने चेहरे पर पूरी गम्भीरता उत्पन्न करके और उँगली उठाकर बोला—"लेकिन याद रखो सब को बड़े तमीज़ से बात करनी होगी। किसी बात से ओछापन नहीं प्रकट होना चाहिये। लिबास से

लेकर छोटी से छोटी हरकत तक का ख्याल रखना चाहिये। कहीं कमल यह न समझे कि हमारे कैप्टेन दोस्त की बहनें और भाई निरे...... देहाती ही हैं।

बड़े भाई के इस फ़रमान पर जिस तरह उसके भाई बहनों ने अपनी ज़िम्मेदारी का अनुभव किया वह देखने ही योग्य थी। उसके सामने उनकी हैसियत बिलकुल ऐसी थी जैसे किसी विद्वान गुरू के सामने नये शिष्यों की।

फिर प्रकाश ने नौकर को सम्बोधित कर कहा—"अरे बुद्धू, तू भी ध्यान से सुन ले। जब हम सब गोल मेज़ पर भोजन के लिये बैठे हों तो याद रखना, जो चीज़ देनी हो बाएँ हाथ से देना। समझे?....."

इस पर बुद्धू ने नकारात्मक और स्वीकारात्मक दोनों ढंग से सिर को बड़े ज़ोर से हिलाया और बोला—"जी समझ गया।"

प्रकाश ने पूछा—"क्या समझे?"

अब बुद्धू के हाथ पांव फूल गए। उसने आँखें सिकोड़ीं और नाक ऊपर को चढ़ाई। उसे इस संकट में देख माला ने चुपके-चुपके बाएँ बाज़ू पर हाथ मार कर इशारों ही इशारों में उसे समझाने की कोशिश की।

बुद्धू ने माला के इशारों को बड़े ध्यान से देखा और अपनी समझ में उसने सब कुछ समझकर अपने दाएँ हाथ को बुरी तरह पीछे हटाकर और बायाँ हाथ आगे बढ़ाकर जवाब दिया—"समझ गया हुज़ूर! हर चीज़ बाएँ हाथ में पकड़कर मेज़ पर रखनी होगी।"

इस पर प्रकाश ने माथे पर हाथ मारा और सबके गले से विचित्र सी आवाज़ निकलने-निकलते रह गई।

बुद्धू का जी चाहा कि वह वहाँ से भाग निकले और सीधा अपने गांव चला जाये।

प्रकाश ने पहले फेफड़ों में खूब हवा भरी और फिर उसे बड़े ज़ोर से छोड़ते हुए कहा—"अरे बुद्धू, यह मतलब नहीं कि तुम बाएँ हाथ से प्लेट

'मेज़' पर रखो या दाहिने हाथ से। बल्कि मतलब यह है कि खाने वाले के बाएँ हाथ खड़े होकर कोई प्लेट रखो या उठाओ......"

और फिर उसने उठकर मिसाल देकर बताया।

दूसरे दिन मुँह अँधेरे माला और कला उठ खड़ी हुईं। उन्होंने माँ और एम. मोने को भी जगाया। सब लोग नहा-धोकर और मेकअप करके तैयार हो गये। उन्होंने एक-एक प्याला चाय पीकर ही सन्तोष किया क्योंकि नाश्ते का प्रोग्राम तो कमल के साथ ही था।

स्टेशन से क़स्बा करीब एक मील के फासले पर है। अतएव वे लोग एक पुराने से तांगे पर लद कर समय से आध घण्टा पहले ही स्टेशन जा पहुँचे। प्रकाश को अपनी वर्दी में और एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब के सदस्यों की घबराहट और उत्सुकता देख छोटे से स्टेशन पर एक बड़ी हलचल मच गई। वे लोग समझे कि अवश्य ही कोई बड़ा आदमी आनेवाला है।

गाड़ी आने का सिगनल डाउन हो चुका था इतने में छोटे लाला अपने बूढ़े बाप को दूकान की ओर रवाना करके हांफते-कांपते वहाँ आ पहुँचे।

गाड़ी स्टेशन में दाखिल हुई तो सबके दिल धक् धक् करने लगे। प्रकाश के सिवा घर के बाक़ी सब लोग एक पंक्ति में खड़े थे गाड़ी के आगमन से उनमें खलबली सी मच गई थी लेकिन प्रकाश ने हाथ हिलाया तो सब शान्त हो फिर मूर्तिवत् खड़े हो गये।

इसी बीच में कमल सेकेण्ड क्लास के डिब्बे के दरवाजे पर खड़ा दीख पड़ा। प्रकाश ने घूमकर सबकी ओर देखा और कहा—"वह रहे मिस्टर कमल।"

इस पर सबने दांत निकालकर प्रसन्नता प्रकट की। लेकिन कोई भी ज़रा सा हिला-डुला नहीं क्योंकि विना आज्ञा हिलना-डुलना मना था।

गाड़ी रुकने पर प्रकाश हाथ फैलाए कमल के डिब्बे की ओर बढ़ा। कमल तुरन्त नीचे उतर आया और दोनों ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया।

प्रकाश ने घूमकर देखा कि घरवालों की लाइन काफ़ी दूर रह गई थी। वह कमल को लेकर उधर आया और उसने बारी-बारी प्रत्येक का परिचय कराया।

"मीट माई सिस्टर माला।"
"माई ब्रादर एम. मोने।"
"सिस्टर कला।"
"मम्मी।"

उधर कमल उन लोगों से परिचय प्राप्त कर रहा था तभी इधर प्रकाश ने देखा कि लाला जी ने धोती के बजाय पायजामा पहन रखा है और उसका इज़ार बन्द नीचे लटक कर झूल रहा है। इस पर उसने इशारे से बाप को समझाने की कोशिश की लेकिन वे कुछ न समझे तो वह तुरन्त पिता और कमल के बीच खड़ा हो गया। बड़ी गम्भीर समस्या थी लेकिन सौभाग्य से एम. मोने असल मामला ताड़ गया और उसने बढ़कर बड़ी सफ़ाई से लाला जी का लटकता हुआ इज़ारबन्द ऊपर खोंस दिया। अब प्रकाश अत्यधिक फुर्ती से काम लेते हुए झपाक से उन दोनों के बीच से हटकर बोला—"और ये रहे डेडी।"

इस प्रकार अचानक एक दूसरे को आमने-सामने पाकर "डेडी' और कमल के हाथों के तोते उड़ गये।

जब वे स्टेशन के फाटक से निकल रहे थे तो सामने से एक दोहरे बदन की प्रतिष्ठित महिला एक अधेड़ अवस्था के पुरुष के साथ आती दिखाई पड़ीं, जिन्हें देखते ही प्रकाश ने झुककर नमस्कार किया।

महिला बोलीं—"कहो प्रकाश ! सुबह-सुबह यहां कैसे ?"

"यह मेरे दोस्त आये हैं इस गाड़ी से। मिस्टर कमल से मिलिये और (कमल से) आप हैं उमा देवी,.. ...और आप मिस्टर त्रिपाठी...और अपनी सुनाइए। आज सुबह ही सुबह हमारे चाचा और चाची कहाँ को......"

"अरे भाई देहरादून से कुसुम की एक सहेली ने कुछ फल भेजे हैं। हम इधर घूमने आये थे, सोचा पार्सल छुड़ाते जायं।"

फिर वे विदा लेकर घर को चल दिये

इक्कीस

ज़रा देखकर अपना जलवा दिखाना।
सिमट कर यहीं आ न जाये ज़माना॥

कमल बनावट-दिखावट और दूसरों में आत्महीनता का भाव उत्पन्न करने के उसूल से कोसों दूर था, इसलिये यद्यपि उसे प्रकाश के यहां आए तीन दिन हो चुके थे, फिर भी घर के किसी व्यक्ति ने यह महसूस नहीं किया कि वह कोई बड़ा आदमी है, यानी ऐसा बड़ा आदमी जिस से बात करते उन्हें डर लगे। सब लोग समझे हुए थे कि जब कैप्टेन प्रकाश के ये तेवर हैं तो फिर उस युवक के तेवरों का क्या कहना जो विलायत में पूरे छः वर्ष बिताकर भारत लौटा हो।

किन्तु कमल के बारे में ये धारणाएँ बिलकुल ग़लत सिद्ध हुईं। उससे बात करना बिलकुल आसान काम था। लड़कियां डर रही थीं कि न जाने वह उनकी एक-एक बात में क्या-क्या दोष निकाले लेकिन उसके व्यवहार से ऐसा प्रकट होता था मानो उनमें कोई कमी ही नहीं थी। इसके साथ ही उसकी बात-चीत और रहन-सहन से एक शान टपकती थी और घर के लोग अपने मन में उसके लिये एक गहरा आदर अनुभव करने लगे थे!

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसके आगमन से घर भर में जीवन, सभ्यता और संस्कृति की एक नई लहर दौड़ गई थी। वह स्वयं कुछ

एकान्त प्रिय और कम बातचीत करने वाला था। लेकिन उसके मौन में देवताओं की सी शान थी। अतएव घर में जो उन लोगों का मिलने वाला आता था उसे वे दूर ही से कमल की ओर इशारा करके कहते कि वह रहे हमारे कमल साहब। पास न आने का कारण यह था कि प्रकाश ने उन्हें कड़ा आदेश दे रखा था कि हर अपरिचित को कमल के पास ले जाना बदतमीज़ी की बात होगी। इसीलिये उसे दूर से ही दिखा दिया जाता मानो वह भी कोई विचित्र जीव हो। और वास्तव में दूर ही से देखकर लोग खुश हो जाते।

मेहमान के स्वभाव और व्यवहार को ध्यान में रखते हुए उसके लिये एक अलग-अलग कमरा था जो मकान के पिछवाड़े बैड मिन्टन लॉन की ओर खुलता था, उसे सौंप दिया गया।

घर का कोई व्यक्ति या नौकर विना उसकी आज्ञा पाये उसके कमरे में न जाता। जब वह सुबह उठकर छोटे से मैदान में हलका फुलका व्यायाम करता तो लड़कियां उसे चुपके-चुपके देखतीं। यद्यपि किसी ने इस बात की ओर संकेत नहीं किया था कि माला या कला में से किसी की भी उससे सम्बन्ध की सम्भावना हो सकती है फिर भी दोनों लड़कियों की सज-धज में स्पष्ट अन्तर दीखने लगा था। मुश्किल यह थी कि वे दोनों बिलकुल साधारण सूरत शकल की थीं। कमल से इन दोनों में से किसी एक का भी कोई जोड़ नहीं था और वे उसकी ओर देखती भी इस प्रकार थीं मानो वह कोई महान देवता हो जो एवरेस्ट से भी ऊंची किसी चोटी पर विराजमान हो। वे स्वप्न में भी यह आशा नहीं कर सकती थीं कि कमल उनमें से किसी की ओर आकृष्ट हो सकता है। फिर भी बन-ठन कर रहना नारी का स्वभाव है। इस बनी-ठनी हालत में यदि कभी वह क्षण भर के लिये उन्हें देख लेता तो वे परेशान हो जातीं।

शाम का वक्त था। नित्य प्रति दिन इस समय सब लोग मिलजुलकर बैडमिन्टन खेलते थे लेकिन जुकाम की शिकायत के कारण कमल कमरे

में ही घुसा रहा।

हाँ, लॉन से माला, कला, एम. मोने तथा अन्य खिलाड़ियों की आवाज़ें उसके कानों में पहुँच रही थीं। इतने में किसी ने दरवाज़ा थपथपाया। कमल इस थपाहट को खूब पहचानता था। उसने बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—"कम इन प्लीज़।"

प्रकाश अपनी आदत के अनुसार बड़े धूम-धड़क्के के साथ अन्दर दाखिल हुआ, "हलो कमल, हाऊ आर यू?'

"ठीक हूँ।"

"मुझे अभी-अभी मालूम हुआ कि तुम बैड मिण्टन नहीं खेल रहे हो। मैंने पूछा क्यों, तो मालूम हुआ कि साहब को ज़ुकाम हो गया।"

"तुमको ठीक खबर मिली है।" कमल ने मुसकराकर जवाब दिया।

"अरे भले आदमी! यों ही बाहर जा बैठते। लॉन में रौनक़ तो है न।"

"भई मूड नहीं बना आज।"

"बड़े मूडी हो तुम।"

कमल मुसकराकर चुपचाप हो गया लेकिन प्रकाश के लिये चुप बैठना असंभव था।

"अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हारा प्रोग्राम क्या है?"

"बस ज़ुकाम ठीक हो जाय तो फिर बैड मिण्टन शुरू कर दूँगा।"

"ओह नहीं.. मेरा यह मतलब नहीं है। मैं तो तुम्हारे काम के बारे पूछ रहा हूँ।'

"ओह, अच्छा, अच्छा....."

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारा प्रोग्राम क्या है?"

"भई मैंने तो इस बात पर अभी तक कुछ ग़ौर नहीं किया।"

"कब ग़ौर करोगे?"

अभी तो मुझे कुछ सूझ ही नहीं रहा है। जब तक तुम्हारी छुट्टियाँ हैं उस समय तक तुम्हारी संगत में मैं अपने दुःख पर काबू पाने की कोशिश करूँगा। इसके बाद कुछ सोचूंगा।"

"कमल भाई, मेरा घर तुम्हारा घर है। मैं तो चाहता हूँ कि अब तुम हमेशा ही इस घर में रहो।"

"यानी ?"

"यानी यही कि तुम इसी जगह प्रैक्टिस शुरू कर दो।"

"यहाँ ? अरे नहीं।"

"क्यों ?"

"बहुत छोटी जगह है।"

"देखो, छोटी जगह पर कामयाबी की गुंजाइश अधिक होती है।"

"तुम्हारा मतलब यह है कि दिल्ली ऐसे शहर में मेरा क़दम ज़मना नामुमकिन है।"

"नहीं नहीं भई, तुम्हारे मामले में यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तुम्हारी 'क्वालिफिकेशन' मामूली नहीं है। असल बात तो यह है कि अभी तुम अकेले हो। क्या यह अच्छा न होगा कि तुम यहाँ हम सब के पास रहो। प्रैक्टिस तो तुरन्त चमक जायगी। सच पूछो तो यहाँ एक भी काम का डाक्टर नहीं है।"

कमल को शायद यह बात पसन्द नहीं आई। बोला—"भई फ़िलहाल मेरा ऐसा इरादा नहीं है। तुम्हारे प्रेम और दोस्ती के लिये मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। लेकिन इतनी छोटी जगह में चाहे मेरी प्रैक्टिस बहुत चमक भी जाय तो भी मेरा दिल नहीं लगेगा। हाँ, महीने दो महीने की बात दूसरी है। मैं तुम्हारे पास बहुत खुश हूँ।"

प्रकाश उसका मतलब समझ गया कि यहाँ पर न क्लब-घर हैं, न सिनेमा, न बड़े-बड़े होटल, न ऊँची सोसायटी। उसने स्वयं अनुभव किया कि कमल से यह बात कहना ही उसकी मूर्खता थी। बोला—"अच्छा, तो

मेरे ख्याल में देहली का एकाध चक्कर लगाया जाय ! क्योंकि बँटवारे के बाद वहां आजकल जगह का मिलना भी बहुत ही मुश्किल होगा। लेकिन मेरे सम्बन्ध कुछ ऐसे हैं जिनसे उम्मीद की जा सकती है कि काम बन जायगा।

"अच्छा।"

प्रकाश तो आरामकुर्सी पर लेट गया और कमल ने मुँह में सिग्रेट दबाकर उसे जलाया और फिर कुछ बेचैनी से कमरे में टहलने लगा। कमरे में पूर्ण शान्ति थी लेकिन अकस्मात् दरवाज़ा एक धमाके से खुला.....।

उन दोनों को आश्चर्य हुआ। क्योंकि इन तीन-चार दिनों में एक बार भी किसी को इस तरह दरवाज़ा खोलने की हिम्मत नहीं हुई थी।

दरवाजा खुलते ही एक युवती झपाके से अन्दर दाखिल हुई। उस समय कमल दरवाजे की ओर ही बढ़ रहा था। उसे देखते ही युवती के क़दम रुक गये। उसके काले बालों की दो मोटी-मोटी चोटियाँ नागिनों की भांति तड़पकर निश्चल हो गईं। उसके प्रसन्नता पूर्ण गोल मुखड़े की दशा एकदम बदल गई। कमल और नवागन्तुक युवती एकदम एक दूसरे के सामने आ गये। बहुत क़रीब......।

कुछ क्षणों की ख़ामोशी के बाद युवती के हाथ में पकड़े हुए रैकेट को जुम्बिश हुई तब मालूम हुआ कि उस मूर्ति में प्राण भी हैं।

लेकिन दोनों की निगाहें एक दूसरे से उलझ कर रह गईं।

प्रकाश असल मामला समझ गया। बोला—"भई अब यह कला का कमरा नहीं रहा।"

युवती सहमी हुई हिरनी की भांति खड़ी थी। यह सुनते ही उसके मुँह से निकला—"ओह!" और फिर वह बिजली की सी फुर्ती से दरवाज़े से बाहर निकल गई।

"यह कौन थी......मैंने इसे पहले कभी नहीं देखा?"

"अरे भई यह उन उमा देवी की बेटी है जो हमें स्टेशन पर मिली थीं।"

बाईस

यूँ तो सब कुछ है तेरा हुस्न मगर मेरे लिये
चश्मे हैरां लबे हैरत के सिवा कुछ भी नहीं।

प्रकाश और कमल दो बार दिल्ली हो आये थे। अफ़सरों से मिल जुलकर दूकान के लिये कोशिश की लेकिन कोई उम्मीद नहीं बंधी। अलबत्ता एक दूकानदार से जो कि पाकिस्तान जा रहा था, दूकान के बारे में सीधे बात चीत हो रही थी। अभी वे लोग किसी नतीजे पर नहीं पहुँचे थे। जिस दिन आखिरी बात चीत के लिये उन्हें उस दूकानदार से मिलना था उसी दिन प्रकाश की तबियत खराब हो गई लेकिन उसने कमल से कहा कि वह स्वयं जाकर उससे बात पक्की कर ले। कमल जब उससे मिला तब पता चला कि वह अपनी दूकान सामान सहित देना चाहता है। उसका सामान कमल के किसी काम में नहीं आ सकता था। प्रकाश ने उससे पहले ही कह रखा था कि यदि ऐसी कोई बात हुई तो उसे आशा थी कि वह दूकान के सामान के लिये कोई ग्राहक खोज सकेगा।

अब की प्रकाश कमल के साथ नहीं था इसलिये उसने दूकानदार से कहा कि वह उसके बारे में दो-तीन दिन के अन्दर-अन्दर निर्णय कर सकेगा।

कारबारी बात चीत हो जाने के बाद कमल ने सारा दिन नई दिल्ली में ही बिताया लंच अच्छे रेस्तारां में खाया। उसके बाद एक अंगरेजी फिल्म का मेटिनी शो देखा और शाम की चाय स्टेशन के रेस्तरां में पी।

आज के दिन का अधिकांश समय सैर-सपाटे में ही बीता। चाय के बाद गाड़ी के बारे में पता लगाया तो मालूम हुआ कि गाड़ी तैयार खड़ी है। लेकिन उसके छूटने में अभी पचास मिनट बाकी है। कमल ने बुकस्टाल से कुछ पत्रिकाएँ खरीदीं और ड्योढ़े दर्जे का टिकट लेकर एक डिब्बे में जा बैठा। छोटी लाइन में प्रायः अधिक भीड़ नहीं होती, विशेषकर तीसरे दर्जे के ऊपर वाले डिब्बे में। यद्यपि कमल ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया लेकिन डिब्बे में अपने सामने की दो सीटों पर एक सेठ और उनकी सेठानी बैठे थे तथा उनके अनेक नीले-पीले बच्चों ने खलबली मचा रखी थी।

कमल लम्बी खाली सीट के कोने में बैठ गया और इतमीनान से पत्रिकाओं के पन्ने उलटने लगा।

इसी बीच में बाथरूम का दरवाजा खुला और एक सुन्दर युवती अन्दर से निकली और वह तनिक विलम्ब के बाद कमल के पांव की ओर सीट पर बैठ गई।

कमल के चेहरे को एक बड़ा साप्ताहिक पत्र छिपाये हुए था और उसने अनजाने में दोनों पाँव भी सीट पर रखे हुए थे जिनके तलुवे बड़ी गुस्ताखी से युवती की ओर उठे हुए थे।

जब तक गार्ड ने गाड़ी को रवानगी की सीटी नहीं दी कमल की तल्लीनता का यही हाल रहा। जब इंजन के चलने से गाड़ी को धक्का लगा तब उसने पहलू बदलने की कुछ ज़रूरत महसूस की। इसी प्रयास में उसके चेहरे के आगे से अखबार एक ओर हट गया और एकदम उन दोनों की निगाहें मिल गईं। युवती पर इसकी जो प्रतिक्रिया हुई वह

तनिक तीव्र थी क्योंकि कमल का चेहरा देखते ही युवती ने सीट के सिरे को एक दम मजबूती से पकड़ा, मानो वह उठकर भाग जाना चाहती हो। लेकिन गाड़ी चल चुकी थी। उधर कमल ने उचटती हुई दृष्टि से उसको देखा और फिर वह तनिक पहलू बदलकर पहले की तरह पत्र पढ़ने में लीन हो गया। एक बार फिर उन दोनों के बीच अखबार का पर्दा आ गया।

एक शिक्षित सभ्य मनुष्य के नाते कमल स्त्रियों की ओर घूर-घूर कर देखने का आदी नहीं था लेकिन पढ़ते-पढ़ते यकायक उसे इस बात का ध्यान आया कि उसने उस युवती को पहले भी कहीं देखा है।

उसे यह विचार बड़ा हास्यास्पद लगा। उसने सोचा कि यदि वह इस युवती से यह प्रश्न कर बैठे कि देवी जी, मालूम होता है मैंने आपको पहले भी कहीं देखा है तो अवश्य ही इसका उत्तर यहीं होगा कि मिस्टर लड़कियों से बात शुरू करने का यह तरीका बहुत ही पुराना हो चुका है... लेकिन नहीं, उसका ख्याल गलत नहीं था। आखिर कहाँ देखा था इसे ?

उसने बार-बार दिमाग पर ज़ोर डाला। अनेक लड़कियों से बात चीत करने के मौके तो उसे मिलते ही रहते थे परन्तु यह युवती उन लड़कियों में से नहीं थी। उसे बस यही लगता था कि वह इस युवती की सूरत से परिचित था।

धीरे-धीरे उस सांझ का चित्र उसकी आँखों के सामने घूम गया और फिर.....न जाने क्यों उसका हृदय ज़ोर-जोर से धड़कने लगा। उसने धीरे धीरे अखबार को चेहरे के आगे से हटाया और चोर-दृष्टि से एक बार फिर उस चेहरे को देखा। लेकिन युवती पहले ही से उसकी ओर देख रही थी। इधर उसने घबराकर फिर अखबार तुरन्त मुंह के आगे कर लिया और उधर युवती ने सिर झुका लिया। कमल ने सोचा, अब क्या करना चाहिये ?

सबसे पहले तो उसने अखबार को उठाकर एक ओर रख दिया और स्वयं खिड़की से बाहर की ओर देखने लगा। थोड़ी देर के बाद उसने फिर कनखियों से युवती की ओर देखा।

युवती भोंडेपन से दोनों टाँगें नीचे लटकाये बैठी थी, किन्तु इस सादगी में भी वह बड़ी प्यारी लग रही थी। उसके दोनों हाथ उसकी गोद में धरे थे। कनपटी के निकट से बालों की एक पट्टी खिंचकर बाक़ी बालों में जा मिली थी, जो बनावटी मोटी-मोटी काकुलों के रूप में उसके कंधों पर लहरा रहे थे। एक ओर काले बालों की घटा और दूसरी ओर चाँद की तरह दमकता हुआ उसका मुखड़ा। उसकी घनी पलकों के हलके साये उसके गालों के उभारों पर काँप रहे थे।

उसके पतले-पतले रसीले होंठ कुछ इस ढंग से अध खुले थे मानो वह प्रेम का कोई बहुत मधुर गीत गा रही हो। वह निश्चेष्ट बैठी थी, किन्तु न जाने उसका शरीर रुपहले पानी की तड़पती हुई लहर के समान क्यों दीख रहा था। सहसा उसने सिर को हिलाए बिना एक क्षण को चोर दृष्टि से कमल की ओर देखा तो उसकी आँखों के दुधिया भाग एक चमकदार कटार की भांति जगमगा उठे।

इसके बाद युवती ने अनेक बार नीचे का हाथ ऊपर किया और ऊपर वाला नीचे रखा।

कमल ने अनुभव किया कि युवती उसकी निगाहों के भार को तीव्रता से अनुभव कर रही है। उसको इस प्रकार एकटक देखना कमल के लिए उचित नहीं था। पहले उसने ऐसा कभी नहीं किया था। अब भी उसे ऐसा नहीं करना चाहिये किन्तु जैसे यह उसके बस के बाहर की बात हो। मानो उसके अन्दर ऐसी दुर्बलता आ गई हो कि उसकी ओर से निगाह हटा लेने में वह असमर्थ हो गया।

आखिर वह भी तो एक युवती थी, जैसे दूसरी युवतियाँ। वह सुन्दर थी, जैसे कि वह पहले भी कई सुन्दर युवतियों से मिल चुका था। क्या

उसके चेहरे में कोई विशेष आकर्षण था ? अवश्य था। लेकिन और युवतियों में भी किसी-किसी समय एक विशेष आकर्षण पाया गया था......।

फिर यह क्या था ?

फिर यह क्या था ??

युवती ने उसकी ओर फिर छिछलती दृष्टि से भी नहीं देखा। लेकिन यदि वह ध्यान से देखती तो उसे मालूम होता कि उसकी निगाहों में उत्सुकता की झलक तक नहीं है। उनमें एक उदासी, बहुत गहरी उदासी की झलक थी। उसकी सदा से उदास आँखों में मानो एक हृदय विदारक चीख जमकर रह गई थी.....नहीं, यह प्रेम नहीं था, यह मुहब्बत नहीं थी.....यह तो.....यह तो एक टूटी हुई वंशी की प्रतिध्वनि थी.....और कमल के लिये वह युवती, युवती नहीं थी बल्कि एक भूला-बिसरा गीत थी, एक दर्द-भरा गीत.....आंसुओं में भीगा हुआ एक ऐसा गीत जो अनजानी धरती पर और अनजाने आकाश के नीचे गाया गया। और जो अपनी ही करुणा और पीड़ा में तड़पता हुआ अज्ञात धरती से शोले की तरह उड़कर न जाने कहां से कहां आ निकला था।

गाड़ी गुड़गांव के स्टेशन पर पहुँची तो युवती जल्दी से गाड़ी से उतर गई और तेज़-तेज़ क़दम उठाती हुई चली गई.....।

कमल स्टेशन से बाहर निकल आया। युवती दूर जा चुकी थी.. लेकिन जैसे एक रेशमी डोरी में उसका हृदय फांसकर और उसका दूसरा सिरा अपने हाथ में मज़बूती से पकड़े वह निर्भीकता से बढ़ती चली जा रही हो.......।

तेईस

आज फिर उस गली को जाता है।
कितना नादान हो गया है दिल ॥

"भई, तुम तैयार नहीं हुए?" प्रकाश ने कमल के कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा।

"किस लिये भई?"

"किस लिये?"

"हाँ किस लिये?"

"ताज्जुब! अरे, तुम्हें कला ने कुछ बताया नहीं?"

"कला?"

"ओहो!......!"

इतने में कला भागी हुई आई।

"अरे कला!"

"जी, मैं दो बार बताने के लिये आई लेकिन....लेकिन आप सो रहे थे......।"

"जगा दिया होता।" प्रकाश ने कुछ बिगड़कर कहा।

"मैंने जगाया नहीं।" कला ने अपनी भूल स्वीकार की, "कैसे जगाती....मैं दोनों बार पास आकर खड़ी रही लेकिन आप आराम कुर्सी पर लेटे थे...मैं...मैं...।"

"लेकिन मैं जाग रहा था।" कमल ने कहा—"मैं खुद हैरान हो रहा था कि तुम कमरे में आकर चुपचाप खड़ी क्यों हो जाती हो ?"

"अरे भाई, तुमने ही पूछ लिया होता कि यहाँ क्या कर रही हो ?"

"पूछ कैसे लेता ? इसका अपना घर है, मुझे इस बात का क्या अधिकार कि मैं घर के लोगों से पूछता फिरूँ कि आप यहां या वहां खड़े क्या कर रहे हैं ?"

"ओफ़ ! तुम्हें भी अजीब-अजीब मज़ाक सूझते हैं।"

कला ने भावावेश में दोनों हाथों की उँगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर कहा—"तो क्या आप मुझको चुपचाप देखते रहे थे ?"

"हाँ।" कमल ने ज़ोर से सिर हिलाकर जवाब दिया।

इस पर कला मारे खुशी के आपे से बाहर हो गई। झपटकर कमरे से बाहर निकल आई और वहां बच्चों की तरह खूब उछली कूदी।

"खैर, वह तो जो हुआ सो हुआ, अब यह बताओ कि आखिर यह धमाचौकड़ी है किस सिल सिले में ?"

"भई, आज हमें चाय पर बुलाया गया है।"

"तो मैं क्या करूँ ?"

"तुम्हें भी बुलाया गया है।"

"यह क्या मज़ाक है ? मुझे यहाँ कौन जानता है !"

"हाँ भई, तुम्हें भी बुलाया गया है। खास तौर से कहलाया गया है कि अपने मेहमान साहब को भी साथ लेते आइयेगा।"

"यह मेहरबान हैं कौन ?"

"वही उमा देवी, जो हमें स्टेशन पर मिली थीं ! अरे, जिनकी लड़की उस दिन धोखे से तुम्हारे कमरे में आ घुसी थी......याद आया ?"

"हाँ।"

प्रकाश ने कलाई पर बँधी हुई घड़ी को देखा और बोला—"हमें

पांच बजे पहुँचना चाहिये था। साढ़े चार बज गये। कम से
मिनट रास्ते में लग जायँगे। भला तुम दस मिनट में क्या तै
सकोगे ? ओफ्फोह ! यह बेवकूफ़ कला ! जब तुम खाना खाकर इध
आए तो थोड़ी ही देर के बाद तो उनका नौकर उनकी चिट्ठी दे
गया था।"

कमल जल्दी-जल्दी तैयार होने लगा।

"कहां जाना होगा ?" उसने पूछा।

"इधर ही, मिलेट्री कैम्प तक।"

"वहाँ वे किस सिलसिले में रहते हैं ?"

"उनके पति स्टोर-कीपर हैं।"

"स्टोर कीपर ?"

"हाँ, हाँ ! लेकिन स्टोर-कीपर आजकल खूब मज़े उड़ाते हैं। बस, कुछ पूछो नहीं।"

"वे लोग यहाँ कब से हैं ?"

"लगभग डेढ़ वर्ष तो हो गये होंगे।"

"और हमें चाय पर बुलाने का मतलब क्या है ?"

"मतलब-वतलब कुछ नहीं। आपस में मेल-जोल है। हम
बुला लेते हैं, वे हमें बुला लेते हैं।"

"जब से मैं आया हूँ तुमने उन्हें कभी नहीं बुलाया।"

"भई, यों ही मौके की बात है। वैसे भी तुम आए हुए थे ज़रा

"तो क्या हुआ ?"

"अब बुलाएँगे... ...उनकी लड़की तो क़रीब-क़रीब रोज़ बै
खेलने के लिये आती थी।"

"अब क्यों नहीं आती ?"

"वह कुछ दिनों से बाहर किसी रिश्तेदार के यहाँ गई
आई है। एक बार तो खेलने आ चुकी है।"

ीकिन आप
ीकार की, "कैसे
किन आप आराम

प्रकाश ने सिग्रेट जालाया और यह कहते हुए बाहर निकल गया— "लो मैं चलता हूँ। देखूँ बाकी सब लोग तैयार हुए हैं या नहीं। अब तुम अपनी आदत के मुताबिक सुस्ती से काम न लेना। बस, जल्दी से जल्दी तैयार हो जाओ।"

"जो हुक्म सरकार का।"

जब वे सब गन्तव्य स्थान तक पहुँचे तो उमा देवी और उनके पति देव उनके स्वागत के लिये आगे बढ़े।

कमल ने अनुभव किया कि उमा देवी ने मातृ-प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

उनके रहने की जगह छोटी ही थी लेकिन थी साफ़ सुथरी। सबसे अच्छी बात यह थी कि वहां कवेल दो अपरिचित सूरतें थीं। उनमें से एक तो उम्र के लिहाज़ से उमा देवी की लड़की की सहेली मालूम होती थी। एक महाशय और थे जिनकी अवस्था लगभग तीस वर्ष की होगी। शरीर इकहरा, शकल मामूली आंखें बड़ी तेज़ और वेश-भूषा काफ़ी कृत्रिमता लिए हुये। बातचित और उठने-बैठने के ढंग में ही सफाई।

सब लोग मेज़ के गिर्द बैठ गये।

माला ने बैठते ही चिल्ला कर कहा—"पर चाची, कुसुम है?"

है कि "अरे हाँ?" उमा देवी ने इधर उधर देखा।

"…ो कुसुम है उसका नाम!—कमल ने सोचा। फिर उसे ध्यान …के गाड़ी में वह उसकी ओर बड़ी बदतमीज़ी से देखता रहा था। लड़की उसने यह बात मां से न कह दी हो और उसकी मां ने बुरा न आया?" …।

"हाँ, हाँ!" मां ने आवाज़ दी।

प्रकाश ने की गूंज खतम भी न होने पाई थी कि कुसुम बग़ल ही से

चुपके से बाहर निकल आई। ऐसा लगता था मानो वह वहीं कहीं छिपी खड़ी थी।

माला बोली—"अरे आज यह कैसी भीगी बिल्ली बनी है। आंखें झुकी हुई, पांव लड़खड़ा रहे हैं। मुँह से बात नहीं निकलती......।"

माला ने तो ये शब्द अल्हड़पन से कहे थे लेकिन उधर कुसुम को पसीना छूटने लगा। बेचारी का भांडा फूटा जा रहा था। उसने चुपके से माला को घूँसा दिखाया लेकिन सभी ने देख लिया और हंस पड़े।

चाय का दौर शुरू होने से पहले अपरिचित व्यक्तियों का एक दूसरे से परिचय कराया गया। अब कमल को मालूम हुआ कि जो नये सज्जन सज-धज कर वहां आए हुए थे उन्हें सब दत्त साहब कहते हैं। सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट नई दिल्ली में किसी अच्छे सरकारी पद पर काम करते थे। उनके चेहरे पर ताज़गी नहीं थी, अलबत्ता उनकी बातों में हास्य की चाशनी ज़रूर थी। लेकिन वही बंधे-टके फ़िकरे और वही जची-तुली बातें और व्यवहार जो सरकारी अफ़सरों की विशेषता है।

वातावरण की यह गम्भीरता और यह ऊँचे हास्य की लहरें नवजवान लड़कियों को कुछ बहुत पसन्द नहीं आईं अतिएव कला ने चिल्लाकर कहा—"अरी कुसुमी! अब तू खेलने क्यों नहीं आती?"

"गई तो थी।"

"हां, केवल एक बार। लखनऊ से जब आई तो दूसरे दिन रेकेट लेकर पहुँची। हमने तो भगवान को बड़ा धन्यवाद दिया था कि आखिर हमारी कुसुमी आ गई। लेकिन न जाने तुझे क्या हुआ कि उसके बाद आई ही नहीं।"

वातावरण की गम्भीरता दूर हुई तो बड़े अलग और छोटे अलग निःसंकोच बातें करने लगे। बातों के शोर में कुसुम बड़ी फुर्ती से कमल की ओर देख लेती लेकिन यदि कहीं कमल भी ठीक उसी समय उसकी ओर देख लेता तो कुसुम की निगाहें घायल पक्षी की भांति तड़पकर लौट

जातीं और उसकी पलकें इतनी झुक जाती मानो उसने आंखें बन्द कर रखी हों।

वह अपने होंठ के कोने को दांतों के नीचे दबाकर धीरे-धीरे छोड़ देती। फिर सहेलियों की किसी बात पर खिलखिलाकर हँस पड़ती... लेकिन यह खिलखिलाहट इतनी उल्लासपूर्ण होती थी मानो उसने कोई सुहाना सपना देखा हो।

आध घन्टे में ही वे सब एक ही कुटुम्ब की भांति आपस में घुल मिल गये।

उमा देवी की बड़ी ठहरी हुई तबीयत थी। स्वभाव बहुत ठन्डा था, बातें मधुर और व्यवहार प्यार भरा।

उन्होंने कुछ देर कमल से बातें कीं। फिर कुसुम की बातें चल निकलीं। उमा देवी ने कहा—"अरी कुसुम! कमल जी को अपनी रंगीन मछलियां नहीं दिखायेगी ? जा दिखा।"

"मैं ?" कुसुम ने चौंककर कुर्सी के दोनों सिरों को इस अन्दाज़ से थामा मानो वह अभी उठकर भाग जायगी। लेकिन कमल उसी समय उठ खड़ा हुआ और इस तरह कुसुम को कुछ कहने का मौका नहीं दिया।

जब कुसुम उठकर घूमी तो उसके भारी बालों की दोनों चोटियां मचलकर नाच गईं।

चौबीस

तुम्हें भी परीशान कर ही गया दिल

चाय-पार्टी बड़ी सफल रही। और जब प्रकाश का कुटुम्ब लौटा तो उनमें प्रत्येक व्यक्ति बड़ा प्रसन्न था। प्रकाश ने कहा—"आज की साँझ सचमुच बड़ी ही अच्छी कटी, कमल!"

कमल, जो किसी गहरी सोच में था, चौंककर बोला—"बहुत, बहुत.....मिसेज़ त्रिपाठी का स्वभाव तो बहुत अच्छा है। वे बड़ी सभ्य और 'कल्चर्ड' महिला लगती हैं।"

"वास्तव में पार्टी की जान तो वही थीं। पढ़ी लिखी हैं। यदि कभी साहित्य या कला पर बात चीत करो तो तुम सचमुच हैरान रह जाओ कि ऐसी छोटी सी जगह पर यह हीरा कहाँ से आ गया।"

"उनके पति त्रिपाठी जी देखने में तो बड़े गम्भीर दिखाई देते हैं।"

"बिलकुल चुग़द हैं। उनमें इतना साहस ही नहीं है कि वे पत्नी से किसी बात पर बहस कर सकें। और वे उमा देवी और अपनी योग्यता का अन्तर भी जानते हैं.....हमारे उनसे बहुत गहरे सम्बन्ध हैं इसलिये हमें मालूम है कि कभी कभी वे हठधर्मी भी कर बैठते हैं। जब कभी वे ऐसी बातें करते हैं तब बेचारी उमा देवी को बहुत परेशान होना पड़ता है। वे बेचारी बड़ी सीधी, सरल और भावुक प्रकृति की हैं.....। असल

में त्रिपाठी जी उनके योग्य नहीं थे। न जाने दोनों का विवाह कैसे हो गया।"

"अच्छा भाई।" कमल ने सहसा एक नया विचार आने पर पूछा—"और वह बने सजे महाशय कौन थे?"

"अरे वह......भई हम उन्हें टरू कहते हैं। मिस्टर टरू.... .... हा! हा!! हा!!!"

"बहुत सज-धजकर आये थे। मेरा मतलब है कि आवश्यकता से अधिक बनावट से काम लिया था उन्होंने।"

"हाँ, वह भी एक ख़ास दाँव पर बैठे हैं.... ....।"

"दाँव पर !...सच ? मेरी ओर कभी कभी वे अजीब नज़रों से देखते थे। जब मैंने आती बार उनसे हाथ मिलाया तो उन्होंने अपनी अन्दर को धंसी हुई चमकदार आँखें मुझ पर इस तरह गड़ा दीं मानो वे मेरी आँखों को छेद डालना चाहती हों।"

"अरे, यह उनकी आदत है। वे सभी को ऐसी नज़रों से देखते हैं।"

"हाँ, तो वह दाँव वाली बात क्या थी?"

"बात यह है कि उनकी नज़र कुसुम पर लगी है।"

"कुसुम पर ?"

"हाँ। तभी तो छैला बनकर आते हैं......लेकिन अफ़सोस यह है कि अपनी शकल आईने में नहीं देखते। भला कहाँ वह सुन्दरता की प्रतिमा और कहाँ ये दुम कटे लंगूर.. टरू कहीं का।"

इस पर माला, कला और एम० मोने सभी चीख-चीखकर टरू की हँसी उड़ाने लगे।

कमल गहरे सोच में डूब गया। उसके मन में विचार उठा कि न जाने टरू, जिनका नाम एस० एन० दुबे था, कहाँ तक पहुँचे थे। शायद उन्होंने अपनी यह इच्छा कुसुम के माता-पिता के सामने रख दी हो और शायद उन्होंने स्वीकृति दे दी हो। लेकिन कुसुम ?...क्या वह

इसे पसन्द करेगी ? क्या उसे भी इस बात का पता है ? कम से कम उसके व्यवहार और बातचीत से तो यह बात नहीं प्रकट होती।

जब वह उसे रंगीन मछलियाँ दिखाने के लिये ले गई थी तो वह बिलकुल कच्ची मिट्टी की तरह दिखाई देती थी। हर कुमारी कन्या कच्ची मिट्टी की भांति होती है। यानी उसके शरीर के प्रत्येक अंग और मन के विचार से कुँवारापन प्रकट होता है। वह उस गुँधी हुई मिट्टी की भांति दिखाई देती है जिसे कुम्हार के कुशल हाथों ने कोई आकार न प्रदान किया हो। कुमारी युवती के इस कौमार्य को सँवारने और आकृति प्रदान करने वाला वह पहला पुरुष होता है जिसे वह अपना हृदय दे देती है। हृदय के साथ अपना शरीर और शरीर का प्रत्येक अंग, मन और मन का हर विचार वह अपने प्रेमी को सौंप देती है। कुमारी युवती की सब से बड़ी इच्छा यह होती है कि वह अपने प्रेमी के आलिंगन में अपने आपको बिलकुल ढीला छोड़ दे जिसमें कि वह उसे जैसी आकृति चाहे प्रदान करे। उसके लिये इस आनन्द से बढ़कर दूसरा कोई आनन्द नहीं होता, कोई सुख नहीं होता.....यही हाल कुसुम का दीखता था।

जब वे दोनों शीशे के बड़े मिर्तबान के निकट खड़े थे जिसमें रंग-बिरंगी मछलियां तैर रही थीं, तब उसने देखा कि कुसुम मिर्तबान के दूसरी ओर दोनों हाथ ढीलेपन से लटकाये, आंखें झुकाए खड़ी थी। यद्यपि यह उसका कर्तव्य था कि वह कुछ बात चीत करे, लेकिन उसके ओठों पर तो जैसे खामोशी की मुहर लगी थी। कमल को स्वयं बात शुरू करनी पड़ी।

"ये मछलियां कहां से आई हैं कुसुम जी.... यही नाम है न आपका ?"

कुसुम ने अपनी उँगलियों के नाखूनों को देखते हुए स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया लेकिन उसकी काकुलों ने नाच-नाच, कर जवाब दिया—"हां जी..हां जी।"

"अच्छा, तो मछलियाँ कहां से आई हैं ये ?"

"बम्बई से ।"

"बम्बई से । वाह,वाह. . .तो क्या वहां बिकती हैं, दूकानों पर. . .?"

"पता नहीं ।"

"पता नहीं ?"

"यह तो मेरे चाचा जी लाये थे ।" कुसुम की आवाज़ महीन थी। उसके स्वर से ऐसा प्रकट होता था मानो वह कमल के शेव से घबरा रही हो ।

कमल ने उसके साथ इधर-उधर की बातें शुरू कर दीं । उसकी शिक्षा की, कालेज की, खेल-तमाशों की, फिल्मों और फिल्म-स्टारों की ।

कुसुम अभी उस स्थान पर थी जहां एक सुन्दरी भावावेश के कारण अपने प्रेमी से अधिक बात नहीं कर सकती । इसलिए उसने पास ही पड़ी हुई एक तश्तरी में से उबले हुए चावल और ज़रा सा गुँधा हुआ आटा उँगलियों पर रख कर पानी में हाथ डुबो दिया । मछलियां तुरन्त बढ़ीं और उसकी उँगलियों पर लगे चावल और आटे को खाने लगीं । उनके होंठों के स्पर्श का बहुत हलका आनन्द कुसुम के चहेरे पर लहराने लगा । वह हँस कर बोली—"मछलियों के होंठ बहुत नर्म हैं ।"

कुसुम की निगाहें बराबर झुकी हुई थीं । कमल ने खाली हाथ पानी में डालकर अपनी उगलियां उसकी उगलियों से छुवाते हुए कहा—"सच-मुच कितनी नर्म हैं ।"

इस पर कुसुम बच्चों की तरह हँसकर और तनिक खुलकर बोली— "लेकिन मछलियों के होंठ आपकी उँगलियों को थोड़े ही छू रहे हैं ।" यह कहकर उसने एक क्षण के लिये निगाह उठाकर कमल की ओर देखा तो उसकी आँखों में शरारत देखकर वह शर्मा गई । उसकी पलकें कई बार झपक गईं । भवें कई बार लचक गईं और होठ कई बार फड़फड़ा गये, मानो वे सब उसके क़ाबू से बाहर हो गये हों । जैसे वह स्वयं न जानती

हो कि क्या करे और क्या न करे।

पहले तो ऐसा लगा मानो वह रुठ गई हो लेकिन फिर वह जल्दी से पंजों के बल उकड़ूँ बैठ गई और बोली—"नीचे से ये मछलियाँ कितनी सुन्दर दिखाई देती हैं।"

फिर उसके कानों ने भावुकता में डूबे हुए मर्दाना स्वर में सुना—"हाँ, बहुत सुन्दर। नीचे ऊपर, दायें-बाएँ, हर तरफ़ से कितनी सुन्दर!"

पुरुष स्वर में याचना के कम्पन को पहचान लेना भोली से भोली युवती के लिये भी बड़ा सरल होता है। अतएव एक बार फिर कुसुम ने सिर उठाया तो देखा कि कमल मछलियों की ओर नहीं देख रहा है बल्कि उसके चेहरे पर दृष्टि जमाए ये शब्द कह रहा है।

इस पर वह तुरन्त खड़ी हो गई। कमल भी खड़ा हो गया। कुसुम ने कन्धों को ज़ोर से हिलाकर मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

कुछ क्षणों तक मौन छाया रहा, फिर कमल ने विनम्र स्वर में कहा—"क्या आपको मेरी कोई बात बुरी लगी?"

कुसुम जवाब में थोड़ी देर के लिये चुप रही और फिर किसी भी भावना से खाली महीन और मन्द स्वर में बोली—"वापस चलें।"

कमल आगे-आगे चल दिया। उसके मन में बीसियों आशंकाएँ उठ रही थीं। वह कुसुम के व्यवहार से कुछ घबरा सा गया था। फिर उसने अनुभव किया कि कुसुम उसके पीछे-पीछे नहीं आ रही है। वह रुक गया। उसने घूमकर देखा, वह दिखाई नहीं पड़ी। वह कुछ परेशान सा हो गया। उसने दबे स्वर में पुकारा—"कुसुम!"

"अब कब आइयेगा?" पास के खम्भे के पीछे से आवाज़ आई।

"ओह!" कमल ने दबे पांव बढ़कर एक दम खम्भे के पीछे की ओर झांका जहां कुसुम खड़ी मुसकरा रही थी। उससे निगाहें मिलते वह हलकी सी चीख मार कर चंचल हिरनी की भांति भागी। पहले

उसने एक दरवाज़े में घुसना चाहा लेकिन वह बन्द था। फिर उसने बरामदे से नीचे कूदने की ठानी लेकिन इतनी ऊँचाई से कूदने की हिम्मत नहीं पड़ी..... उसको इस दशा में देख कमल हँस दिया।

रात के भोजन के बाद जब प्रकाश ने दूकान के सिलसिले में दिल्ली चलने के बारे में पूछा तो कमल ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उसकी आंखों में आंखें डाल दीं और दृढ़ स्वर में कहा—"अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

पच्चीस

मचल रहा है रगे-ज़िन्दगी में खूने-बहार

"हम जीत गये।" यह कहकर कुसुम ने रैकेट को ऊपर उछाला और फिर उसे दबोचकर बच्चों की तरह मारे खुशी के उछलने लगी। इसके साथ ही बैडमिण्टन कोर्ट में एक शोर मच गया।

हारा हुआ खिलाड़ी कमल कोर्ट की दूसरी ओर रैकेट बग़ल में दबाए बड़े इत्मीनान से सिग्रेट जलाने में लगा था।

अब कुसुम पिछले सप्ताह से प्रतिदिन खेलने के लिये आ रही थी। इस बीच में वह कमल के साथ 'सिंगिल्स' में कई बार खेल चुकी थी, जिसमें हर बार कमल की हार होती थी। सब जानते थे कि कमल बैडमिण्टन और टेनिस का बड़ा अच्छा खिलाड़ी था इसलिये कुसुम जैसी साधारण खिलाड़ी से हार जाना आश्चर्य की बात थी।

जब कुसुम कमल को लगातार तीन बाज़ियां हराकर उछल-उछल कर प्रसन्नता प्रकट कर रही थी तब एम० मोने ने उसके कन्धे से कन्धा भिड़ाकर कहा—"अरे हट कुसुमी, खामख्वाह खुश हो रही है। तेरे जैसी खेलनेवालियों को तो कमल भैया जेब में डाले फिरते हैं।"

कुसुम ने ठेंगा दिखाकर कहा—"ले, हम क्या जानें। हमने तो [हरा] दिया उन्हें......।"

इतने में कमल भी उनके पास पहुँच गया। तब कुसुम ने भवें चढ़ा

कर पूछा—"क्यों जी, आप हार मानते हैं या नहीं.... ?"

"अरे इसमें मानने न मानने की क्या बात है ? हम हारे हैं और बीच खेत सबके सामने हारे हैं......।"

एम. मोने ने सिर हिलाकर कहा—" कमल भैया आपको बनाना खूब आता है। जनाब, हम भी नज़र रखते हैं। जब हमारी आपके सामने कभी दाल नहीं गली तो भला यह बेचारी किस खेत की मूली है। क्योंकि इन्हें हरा देना हमारे बायें हाथ का खेल है।"

कमल ने इशारे से उसे चुप रहने को कहा और बात यहीं पर खतम हो गई।

फिर सब लोग 'कमल भैया' से विलायत की बातें सुनते रहे।

आज शाम को जब कुसुम सायकिल पर आ रही थी तो सायकिल का ट्यूब भक से फट गया था। उस समय खेल की गर्मागर्मी में किसी को ध्यान नहीं रहा पर जब ख्याल आया तो नौकर को सायकिल वाले के यहां भेजा गया। लेकिन सायकिल वाले की दूकान बन्द हो चुकी थी।

अब सवाल यह था कि कुसुम घर कैसे पहुँचे। प्रकाश दिल्ली गए हुए थे। मर्मी जानती थीं कि कुसुम की मां इस बात को नापसन्द करेगी, यदि कुसुम को नौकर के साथ भेजा गया। अन्त में एम. मोने से कहा गया कि जाओ कुसुम को छोड़ आओ। मोने वैसे भी बड़ा सुस्त आदमी था। बोला, मैं थका हुआ हूँ। इधर मोने की बातों से कुसुम भी जली बैठी थी, "तुम्हारे साथ जाता कौन है...यह तैयार भी हो तो ममी, हम इसके साथ नहीं जायंगे।"

मोने और भी कुछ अकड़कर आराम, कुर्सी पर लेट गया और बेपरवाही से बोला—"भाई, जिसके साथ जी चाहे चली जाओ......।"

वह मन में जानता था कि अन्त में कुसुम को उसी की खुशामद करनी पड़ेगी।

रात हो चली थी। और अब इस बात का जल्दी से जल्दी प्रबन्ध हो जाना चाहिये था।

इसी बीच में कमल नहा-धोकर और कपड़े बदल कर वहां आ गया और ममी के पास जाकर धीमे स्वर में बोला—"अगर आप कहें तो मैं चला जाऊं। मुझे भी आप घर का ही आदमी समझिये।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं। तुम हमारे ऐसे ही बेटे हो जैसे प्रकाश....... ए कुसुम! सुन तो, कमल भैया के साथ जाने में कोई आपत्ति न हो तो चली जा इनके साथ।"

एम० मोने बोल उठा—"अजी वाह! हम इन्हें क्यों कष्ट दें। यह हमारे गेस्ट (मेहमान) हैं.. इससे अच्छा तो यही है कि हमीं छोड़ आएँ।"

अब फिर कुसुम ने अपना नन्हा सा अगूंठा दिखाया—"ले। मैं तेरे साथ जाऊँगी ही नहीं।"

"अच्छा तो जा कमल भैया के साथ।" ममी ने सलाह दी। कुसुम तुरन्त तैयार हो गई।

वे दोनों चल दिये।

एक मील का फ़ासिला था। उन्होंने यह अन्तर और कम करने के लिये कच्ची सड़क छोड़कर खेतों में से जाने वाली पगडन्डी पर चलना शुरू किया।

दोनो चुप थे।

दोनो सोच रहे थे कि बात शुरू कैसे की जाय। सबके सामने तो उनकी आम तौर से निःसंकोच बातचीत हो जाती थी किन्तु अकेले में न जाने क्या हो जाता था।

आखिर कमल ने पूछा—"क्या आप मुझसे नाराज़ हैं?"

कुसुम नाराज़ तो मोने से थी लेकिन बातचीत शुरू करने के लिये इसी बात को बढ़ाने में कोई हर्ज न समझकर उसने कहा—"नहीं तो।.......अच्छा यह बताइये कि आप मुझसे जानबूझ कर हार

जाते हैं ?"

"नहीं।"

"नहीं, आप झूठ बोलते हैं।"

"मैं झूठ नहीं बोलता।"

"अच्छा, यह बताइये...और बिलकुल सच-सच बताइये कि आप मोने को बड़ी आसानी से हरा देते हैं ? देखिये, झूठ न बोलियेगा।"

"हां।"

"यह सच है कि आप मोने को हरा देते हैं ?"

"जी हां।"

"बड़ी आसानी से हरा देते हैं ?"

"जी।"

"और मोने मुझे बड़ी आसानी से हरा देता है। इसका मतलब यह है कि आप मुझे और भी आसानी से हरा सकते हैं। और इसका मतलब यह भी है कि आप मुझसे जानबूझ कर हार जाते हैं। जाइये, अब हम आपसे नहीं बोलते। आपने हमसे झूठ बोला।"

यह कहकर और तनिक रूठकर वह कमल से कुछ दूर हट-कर चलने लगी। कमल ने उसके पास जाकर उसका हाथ थाम लिया।

अभी तक कमल ने उसे स्पर्श नहीं किया था। अब जो कुसुम ने उसके हाथों के स्पर्श को अनुभव किया तो वह मन ही मन में इस तरह पिघल गई जैसे अँगीठी के पास मोमबत्ती पिघलकर बह जाय। उसके मुंह पर आया हुआ प्रत्येक शब्द मानो हवा में विलीन हो गया। उसकी आँखें झुक गईं, वह कुछ बोल न सकी।

लेकिन कमल ने ऐसा अनुभव किया, मानो वह नाराज़ी के कारण चुप है। उसने क्षमा याचना करते हुए कहा—"कुसुम ! मैं जान बूझकर नहीं हारता बल्कि मैं तुम से जीतने की पूरी कोशिश करता हूँ। लेकिन

तुम्हारे शरीर का प्रत्येक अंग, तुम्हारे मुखड़े का प्रत्येक नक्शा मुझे अपनी ओर खींच लेता है। कुसुम ! मैं हारने पर विवश हो जाता हूँ। मुझे चिड़िया दिखाई ही नहीं देती। मैं जानता हूँ, मुझे ऐसी बातें नहीं कहनी चाहियें। लेकिन जब तुम मुझे सच बोलने पर विवश करती हो और सच्ची बातें सुनना पसन्द करती हो तो मेरा भी धर्म है कि तुम्हारे सामने खोलकर सारी बात रख दूँ, चाहे तुम मुझसे और भी अधिक नाराज़ हो जाओ।"

कमल की बातों से कुसुम पर एक नशा सा छाया जा रहा था। वह निढाल सी हो गई। कमल ने उसके कन्धे को नरमी से खींच कर अपने कन्धे से मिला लिया और इस प्रकार साथ-साथ चलते तथा इधर-उधर की बातें करते हुए वे उमा देवी के घर की ओर बढ़ने लगे।

उमा देवी बिजली के प्रकाश में बरामदे में ही बैठी दीख पड़ीं। इतने में छोटे से फाटक में जब उनका जोड़ा आगे बढ़ा तब पहले तो उन्हें वे दोनों बिलकुल अपरिचित से दीख पड़े, लेकिन जब वे कुछ प्रकाश में आये तब उनका चेहरा खुशी से खिल गया। वे कमल को देखकर बोलीं—"तुम्हें देख मुझे जितना आश्चर्य हुआ उससे अधिक खुशी हो रही है।"

"मम्मी !" कुसुम ने माँ के गले का हार होकर कहा—"आज मेरी सायकिल का ट्यूब फट गया। सायकिल वाले की दुकान बन्द थी, मरम्मत नहीं हो सकी। प्रकाश भैया दिल्ली से नहीं आए थे और मोने से हमारा झगड़ा है इसलिये मम्मी ने इन्हें मेरे साथ भेज दिया।"

"यह हमारा सौभाग्य है कि कमल बेटा यहाँ आए। लेकिन बेटी, तुम्हें मोने के साथ आ जाना चाहिये था। इन्हें तकलीफ़....।"

कमल बोला—"जी, बिलकुल नहीं, तकलीफ़ की इसमें क्या बात है।"

वे तीनों बरामदे में बिछी हुई कुर्सियों पर बैठ गये। कुछ देर तक बातें करते रहे। नौकर ने खबर दी कि खाना तैयार है तो कमल ने कहा—

"अच्छा, अब मैं आज्ञा चाहता हूँ।"

"तुम भी भोजन करो न हमारे साथ।"

"जी नहीं! सब लोग इन्तजार कर रहे होंगे।"

इस पर कुसुम ने उठ कर माँ के कान में चुपके से कुछ कहा और फिर एक शरारत भरी निगाह कमल पर डाल स्वयं फुर्ती से मकान के अन्दर भाग गई।

उमा देवी ने मुसकराकर कमल की ओर देखा और बोलीं—"कुसुम कहती है कि आते-आते मैंने माला और कला से कह दिया था कि हम आपको अपने साथ भोजन करायेंगे। इसलिये आपका कोई इन्तज़ार नहीं करेगा।"

छब्बीस

तेरी रंजिश की इन्तहा मालूम
हसरतों का मेरी शुमार नहीं

जब वे तीनों भोजन के कमरे में पहुँचे तब कमल ने देखा कि एक गोल मेज़ पर बड़ा सा मेज़ पोश बिछा है। उस पर कढ़ाई का बहुत सादा लेकिन सुथरा काम किया गया था। उसने पूछा—"यह मेज़ पोश किसने काढ़ा है?"

उमा देवी ने जवाब दिया—"कुसुम ने।"

"सच? एक्सिलेण्ट!" यह कहकर उसने हाथ में लेकर काम देखना शुरू किया।

"क्या तुम्हें पसन्द है बेटा?"

"जी! ऐसे कामों में फ़िनिश (finish) देखी जाती है। यह बड़े अभ्यस्त हाथों का काम मालूम होता है। और मुझे यह सुनकर सचमुच आश्चर्य हुआ है कि यह कुसुम का काढ़ा हुआ है।"

"लेकिन सिखानेवाली तो आप हैं।"

कुसुम की इस बात पर मां ने बेटी को प्यार से देखा और मुसकुरा पड़ीं।

उनका घर यद्यपि छोटा सा था लेकिन कमल को वह बहुत पसन्द था। वहाँ की हर चीज़ पसन्द थी। इसलिये नहीं कि उसे कुसुम से प्रेम

हो गया था बल्कि यदि कुसुम से प्रेम न होता तब भी वह उनके घर के रख रखाव और सफ़ाई से प्रभावित हुए बिना न रह सकता।

जब वह भोजन करने के लिये बैठे तो कमल के मुँह से अनायास निकल गया—"माता जी, मुझे आपके घर की हर चीज़ पसन्द है।"

"लेकिन बेटा! हम अमीर तो हैं नहीं। मध्यम श्रेणी के लोग हैं। हमारी भला कौन सी चीज़ तुम्हें पसन्द आ गई।"

"नहीं, रुपये पैसे की बात छोड़िये। यह तो आनी-जानी चीज़ है। लेकिन इस घर की हर चीज़ के पीछे मुझे एक व्यक्तित्व की झलक दिखाई देती है। वह झलक कुसुम की नहीं क्योंकि वह अभी बच्चा है। वह झलक आपके व्यक्तित्व की है!" फिर उसने रूमाल गोद में डालते हुए कहा—"शायद आपको अजीब सी बात मालूम हो. मुझे स्वयं यह अजीब सी बात लगती है। लेकिन यह एक वास्तविक तथ्य है कि पहले दिन जब मैंने आपको देखा तो मुझे आपके साथ एक अजीब अपनत्व का अनुभव हुआ जैसे......जैसे आप......आप मेरी मां हैं।"

उमा देवी के सुर्मयी और सफ़ेद बालों के नीचे उनका चेहरा और भी प्रफुल्लित दीखने लगा। वह बोलीं—"ठीक तो है, मैं तेरी मां ही तो हूँ।"

"असल बात यह है माता जी कि मैंने अपनी मां को नहीं देखा... वे मेरे होश सँभालने से पहले ही मुझे छोड़ गई थीं। मैं हमेशा सोचा करता कि न जाने मां कैसी होती है......और अब मैंने आपको देखा तो एक दम अनुभव हो गया कि मां ऐसी होती हैं।"

उमा देवी को स्वयं उससे स्नेह सा हो गया था। यह भावना दोनों ओर एक साथ काम कर रही थी। वह इस दिलचस्प तथ्य पर विचार कर रही थीं और कमल ने समझा कि वह एक ग़ैर दिलचस्प विषय पर बात-चीत कर रहा है। अतएव उसने बात का रुख़ बदलने के लिये यकायक पूछा—"और हां, माता जी, मुझे तो ख्याल नहीं रहा। बाबू जी

कहां है ?"

"आज उनकी ड्यूटी शाम से लगी है। वे देर से आयेंगे।" कुसुम ने जल्दी से जवाब दिया। मालूम होता था कि वह बातें करने के लिये बेचैन हो रही थी। उमा देवी अभी तक अपने विचारों में लीन थीं। उन्होंने इसी रौ में कहा—"कमल बेटा! जानते हो, तुम भी मुझे अच्छे लगते हो।"

"आपकी कृपा है।"

"और आप दोनों हमको अच्छे लगते हैं। लेकिन इसमें हमारी कृपा की कोई बात नहीं।" कुसुम ने नटखटता से कहा।

इस पर सब हँस पड़े।

"माता जी! आपके और बच्चे नहीं हैं!"

"बेटा! तीन लड़कियाँ थीं। बेचारी दो मर गईं। एक बचपन में और दूसरी चौदह वर्ष की होकर.....।"

"और हम बच गये हैं।" कुसुम ने होंठ सिकोड़कर बच्चों की तरह भोलेपन से कहा।

"धत्!" मां ने चपत मारने के अन्दाज़ में हाथ उठाया बेटी पर, फिर बोलीं—"यह बड़ी शरीर है।"

"जी?" कमल ने एक नज़र कुसुम पर डाली, "लेकिन देखने में ऐसी दिखाई पड़ती है जैसे इसके मुँह में दांत भी नहीं हैं.....।"

इस पर कुसुम ने हँसते हुए अपना गोल-मोल चेहरा आगे को बढ़ाया। उसके दांतों की सुन्दर लड़ी बिजली के प्रकाश में दमक उठी और वह उसी अन्दाज़ में बोली—"देखिये तो, क्या हमारे मुँह में दांत नहीं हैं?"

"लो, देखीं इसकी हरकतें। जब तक किसी से नहीं खुलती तब तक तो भीगी बिल्ली बनी रहती है। लेकिन जब खुल जाती है तब फिर इससे शैतान भी भागता है।"

"आं ममी ! जाइए हम आपसे नहीं बोलेंगे ।"

"माता जी । यह बात भी है कि शरीर चाहे जितनी हो लेकिन बड़ी समझदार भी तो है..... ।"

इस पर उमा देवी हँसने लगीं । उनकी बत्तीसी अभी सही-सलामत थी इसलिये उनकी हँसी में अभी तक आकर्षण था ।

कुसुम बिगड़कर बोली—"ममी, आप इनकी हाँ में हाँ मिलाइए न ।"

"हाँ भई हाँ, कमल ठीक ही तो कहता है ।"

इस पर कुसुम ने आँखें नचाकर प्रसन्नता प्रकट की और बोली—"देखिये, अब यह कभी न कहियेगा कि यह ऐसी मालूम होती है जैसे इसके मुँह में दांत ही नहीं हैं । इतने अच्छे दांत हैं मेरे । हैं कि नहीं ?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, तुम्हारे दांत सचमुच बहुत अच्छे हैं ।"

"और आपके......?"

"भई मेरे दांतों को तुम बुरा नहीं कह सकतीं । हालांकि यह इतने अच्छे नहीं हैं जितने कि तुम्हारे ।"

"आपकी आँखें अच्छी हैं......क्यों ममी ?"

"हाँ कमल; सच कहती है कुसुम । तुम्हारी आखें कितनी अच्छी हैं । इनमें एक अजीब प्रकार की जिज्ञासा और उदासी की झलक दिखाई देती है ।"

कमल कुछ क्षण मौन रहा फिर बोला—"लोग यह बात मेरे पिता जी की आँखों के बारे में भी कहा करते थे ।"

"अच्छा ?"

"लेकिन यह उदासी की झलक या कोई और भाव जो उनकी आँखों से प्रकट होता था, उसका कारण उनकी मृत्यु के बाद मेरी समझ में आया ।"

"क्या कारण था ?" उमा देवी पूछ बैठीं ।

कमल को बड़ा संकोच लगा। लेकिन वह उस घर को अपना घर समझने लगा था और फिर उमा देवी को सचमुच वह अपनी मां जैसा ही समझने लगा था। अतएव उसने दबी नज़रों से एक बार कुसुम की ओर देखा और फिर उमा देवी को सम्बोधित कर बोला—"उन्हें शायद किसी लड़की से प्रेम हो गया था लेकिन उससे उनका विवाह नहीं हो सका। यह शायद सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी उनके जीवन की। वे मरते दम तक उसकी याद को भुला नहीं सके। वास्तव में मेरे पिता जी बड़े भावुक स्वभाव के आदमी थे। उन्होंने युवावस्था में किसी को बड़ी तीव्रता से चाहा और फिर न जाने वह लड़की मर गई या क्या बात हुई कि वे दोनों जीवन-साथी नहीं बन सके। इसी वेदना को वे जीवन-पर्यन्त दबाए बैठे रहे। मेरे जन्म के कुछ ही दिनों बाद मेरी माता जी का स्वर्गवास हो गया। फिर उन्होंने मेरी ज़िन्दगी संवारने के लिये अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी।"

"तुमको ये बातें कैसे मालूम हुईं ?"

"बात यह है कि बम्बई में उन्होंने एक नया मकान उस समय बनवाया था जब कि मैं विलायत में था। मेरे वापस पहुँचने से दो ही दिन पहले उनके हृदय की गति बन्द हो जाने से उनकी मृत्यु हो गई। मैंने उनके कागज़ात आदि देखे तो मालूम हुआ कि उनकी शादी उस लड़की से नहीं हो सकी जिससे वे प्रेम करते थे। सचमुच वे उस लड़की को सच्चे दिल से प्यार करते थे। उन्होंने उसकी याद में एक कमरा बिलकुल अलग कर लिया था। मालूम होता है मरने से पहले उन्हें अपनी मृत्यु का कुछ आभास मिल गया था। उन्होंने लड़की के हाथ के लिखे हुए पत्रों को फाड़ डाला...।"

"क्या नाम था उस लड़की का ?" उमा देवी ने पूछा।

"यह नहीं मालूम हो सका।"

"उस मकान को आप बेच आये होंगे।" कुसुम ने पूछा।

"बेचना चाहता था लेकिन पिता जी के दोस्त ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। कहने लगे, तेरे पिता जी की बड़ी इच्छा थी कि वह तेरी बहू को इस मकान में लायें। कहने लगे, जब तुम इस मकान में छम छम करती हुई दुल्हन लाओगे तो उनकी आत्मा को बहुत शान्ति मिलेगी।"

"बड़ी अजीब बात है।" उमा देवी ने होठों में कहा, फिर उच्च स्वर में बोलीं—"तुम्हारे पिता जी का क्या नाम था?"

"उन्हें सुरेश बाबू के नाम से पुकारा जाता था।"

फिर तुरन्त ही कुसुम और कमल आपस में बातें करने लगे और उन्हें यह पता ही न चला कि उमा देवी का हाथ रुक गया है और उनके कांपते हुए हाथ से कौर छूटकर प्लेट में गिर पड़ा है।

सत्ताईस

सारी दुनिया से दूर हो जाए,
जो ज़रा तेरे पास हो बैठे ।

जब प्रकाश के घरवालों को इस बात का पता चला कि कमल ने वहीं पर प्रैक्टिस करने का निश्चय कर लया है तो उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेषकर माला और कला ने अपनी-अपनी जगह पर यही समझा कि यह सब उनके रूप की ही करामात है। लेकिन वे प्रेम और मुहब्बत को केवल एक खेल समझती थीं। उनके निकट वह एक मन बहलाने की चीज़ थी. यानी अगर उन्हें मालूम हो जाता कि कमल के मन में उनके लिये रत्ती भर भी स्थान नहीं तो इससे उनके हृदय के टूट जाने का भय नहीं था और न इस बात की आशंका थी कि वे आत्म-हत्या कर बैठेंगी। शायद वे मन में अपने और कमल के बीच जो अन्तर था उसे भली भांति समझती थीं। लेकिन जीवन को काल्पनिक रंगों से रंगीन बनाने में वे कोई हर्ज नहीं समझती थीं।

बाक़ी घरवालों को असल बात का पता नहीं था। पहले कमल ने दिल्ली जाने का पक्का निश्चय कर लिया था लेकिन फिर वे यही समझे कि दिल्ली में कोई अच्छी जगह नहीं मिल सकी, इस कारण कमल ने अपना निर्णय बदल दिया है। केवल प्रकाश ही वह व्यक्ति था, जिसने कमल की इस करवट में किसी रहस्य का अनुभव किया। और फिर कमल

और कुसुम की चुहलवाज़ी में इस रहस्य को किसी हद तक भांप भी गया लेकिन कमल से इसके विषय में कोई बातचीत करने की उसने अवश्यकता नहीं समझी।

यह निर्णय हो जाने पर कि कमल वहीं पर प्रेक्टिस करेगा, यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि डिसपेंसरी के लिये कौन सी जगह उपयुक्त होगी। गुड़गांव में तो जो जगह भी पसन्द आ जाती उसे ले लेना कोई मुश्किल काम नहीं था लेकिन वहां कोई दूकान या इमारत ऐसी नहीं थी जो उसे पसन्द आ जाती। बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। आखिर प्रकाश को एक तरकीब सूझी जो सबको पसन्द आई। प्रकाश की राय यह थी कि उनके कोठी तथा मकान के इर्द-गिर्द काफ़ी जगह छूटी हुई थी इस लिये अगर फाटक के पास एक कोने में दो तीन साफ-सुथरे कमरे बनवा लिये जायं तो बहुत ही अच्छा हो। कमल को यह प्रस्ताव बहुत अच्छा लगा। उसने सोचा कि दिल्ली में भी उसे कुछ हज़ार रुपये पगड़ी के तौर पर देने ही पड़ते। अगर इसी रुपये से इधर काम बन जाय तो और क्या चाहिये। यद्यपि उसके पास अधिक रुपया नहीं था फिर भी इतना अवश्य था कि वह बेफ़िक्री से अपने व्यवहारिक जीवन का श्री गणेश कर सके। लेकिन उसके खर्च करने पर प्रकाश राज़ी नहीं हुआ। वह कहने लगा जहां मकान पर इतना खर्च किया है वहां थोड़ा और सही। कंजूस लाला जी भी मन में सोच रहे थे कि रुपया लगाने में क्या हर्ज है। अपना ही मकान बनेगा। अलबत्ता किराया वसूल कर लिया करेंगे। और फिर, घर का डाक्टर हो जायगा। क्योंकि जब से उनके बेटे बेटियों पर अगरेज़ी रोग़न चढ़ा था, वे बीमार भी कहीं अधिक रहने लगे थे। यानी रोज़ाना घर का एक न एक सदस्य बीमार रहता। और न जाने कैसी कैसी दवाइयाँ मँगाकर इस्तेमाल की जाती थीं, काफी वाद-विवाद के बाद लाला जी ने कमल और प्रकाश की बातचीत में हस्तक्षेप करते हुए कहा—"देखो भाई, हम पढ़े लिखे नहीं हैं, लेकिन अगर मानो तो एक बात कहें।"

प्रकाश बोला—"अच्छा, ठीक है डैडी। आप ही बताइए अपनी तरकीब......लेकिन इतना तो आप भी मानेंगे कि हम यह कभी नहीं सहन कर सकते कि कमल रुपया खर्च करें।"

"ठीक है, यह मानता हूँ।" और फिर लाला ने इस तिकड़म से अपनी तरकीब भिड़ाई कि दोनों कायल हो गये। लाला जी ने कहा—"बेटा कमल! हमें तुमसे किराया लेने में भी बड़ी शर्म आती है। लेकिन तुम नहीं मानते इसलिये......।"

आखिर इमारत बननी शुरू हो गई। एक ईंट की दीवारें चुनकर तीन कमरे बना दिये गये। एक में डिसपेंसरी, दूसरा डाक्टर साहब के बैठने के लिये और तीसरा छोटा सा कमरा रोगियों का तफ़सील से मुआ-यना करने के लिये। और बाहर खुला बरामदा और उसमें रोगियों के बैठने के लिये बेंचें।

जब यह छोटी सी इमारत तैयार हो गई तो कमल दिल्ली से अपनी पसन्द का फ़र्नीचर, दवाइयाँ और दूसरे आवश्यक सामान ले आया। सामान सजाने और अपने अपने ठिकाने पर रखने में एम० मोने, माला और कला ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। अगर कभी संयोग से कमल किसी लड़की के कन्धे पर हाथ रख देता तो वह उस स्पर्श के ख़याल से ही घन्टों प्रसन्न रहती। इस तरह से अन्त में यह काम भी पूरा हो गया।

अब उद्घाटन की तैयारियाँ आरम्भ हुईं। क़स्बे के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को चाय पार्टी के लिये निमंत्रण-पत्र भेजे गये। उद्घाटन के दिन बड़ी चहल पहल रही। लाला जी पुलिस वालों और नगर के अन्य सरकारी अफ़सरों तथा सैनिक अधिकारियों को अपने यहां पाकर फूले न समाते थे। उन्होंने मन में सोचा कि लो, कमरों पर जो कुछ खर्च हुआ, वह सब रुपया तो यहीं वसूल हो गया।

शायद यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पार्टी में कुसुम और उसके माता-पिता भी शामिल थे। मिस्टर दत्त को भी बुला लिया गया था

क्योंकि कुसुम के पिता जी से उनके बड़े गहरे सम्बन्ध थे। जब मिस्टर दत्त आये और उन्होंने यह रौनक़ और गर्मी देखी तो स्वयं भी बड़ी प्रसन्नता का प्रदर्शन किया।

चाय से पहले जब सब मेहमान कुर्सियों पर बैठे गप-शप में लगे थे तब माला, कला, एम० मोने और कमल प्रबन्ध के सिलसिले में भागे-भागे फिर रहे थे। प्रकाश ने कमल के अनुरोध पर मेहमानों का स्वागत करने और उन्हें बैठाने तथा बात चीत करने का भार अपने ऊपर ले लिया। ऐसे अवसर पर भला कुसुम कहाँ चुप बैठने वाली थी। वह भी काम-काज में लग गई। इसी प्रकार घूमते-फिरते संयोग से मकान के एक एकान्त कोने में दोनों का आमना-सामना हो गया और कुसुम छुई-मुई की तरह सिमटने लगी। उस समय वह बहुत प्यारी दीख रही थी। कमल को वह इतनी प्यारी लगी कि उसने अनायास बड़ी नर्मी से उसे अपने एक बाज़ू के घेरे में ले लिया। कुसुम का दम फूला हुआ था। गाल तमतमा रहे थे ... ...उसकी आँखें ज़मीन में गड़ी थीं।

सहसा उन्होंने अनुभव किया कि कोई आ रहा है और इसके पहले कि वे एक एक-दूसरे से अलग होते प्रकाश वहाँ पहुँच गया। कुसुम सिट-पिटाकर अलग हो गई और फिर बगटुट भागी। प्रकाश ने अपने चेहरे से कोई भाव प्रकट नहीं होने दिया। बोला—"भई चलो, सब मेहमान तुमसे मिलने के लिये बेचैन हो रहे हैं।"

पार्टी समाप्त हो जाने के बाद जब सब मेहमान विदा हो गये तो प्रकाश और कमल दिमाग़ ताज़ा करने के लिये सिग्रेट का धुआँ उड़ाते हुए फाटक से निकलकर खेतों की ओर चल पड़े। दोनों मौन थे। शायद थकावट के कारण।

अन्त में प्रकाश ने मौन भंग करते हुए कहा—"अच्छा, तो यह बात है!"

कमल ने चौंककर पूछा—"क्या मुझसे कुछ कहा ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"तुम कुछ कह रहे थे।"

"कुछ !...हाँ।"

"क्या कहा तुमने ?"

"मैंने कहा.... ....अच्छा, तो यह बात है !"

क्या बात ?"

प्रकाश ने एक हाथ का घेरा बनाते हुए हवा में चुम्बन की एक आवाज़ उड़ा दी और फिर हँस पड़ा। कमल उसके मतलब को पाकर मुस्करा दिया और फिर बोला—"हाँ यही बात है।"

"बात तो अच्छी है।"

"सच ?"

"हाँ.......अच्छी क्या बहुत अच्छी है.... ....बधाई।"

"बधाई कैसी ?... अभी उसके माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करनी बाकी है।"

"अरे, अगर तुम पसन्द करो तो मुझ पर छोड़ दो। भला इनकार करने का उनमें साहस हो सकता है .....लेकिन यार... ...।"

"लेकिन क्या ?"

'एक रुकावट है।"

"कैसी रुकावट ?"

"दत्त !"

"क्यों ?'

"मुझे एक विश्वस्त सूत्र से यह खबर मिली थी कि उसकी निगाह कुसुम पर है और शायद उसने उसके पिता को आधा राजी भी कर लिया है। पहले की बात है, मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी इसलिये मैं चुप रहा।"

"लेकिन कुसुम तो उसे पसन्द नहीं करती। और जहाँ तक मेरा विचार है उमा देवी भी उसे पसन्द नहीं करेंगी।"

"यह ठीक है, लेकिन दत्त बड़ा कुटिल और बड़ा हठी तथा ढीठ आदमी है। ख़ैर, हमारा क्या कर लेगा। ज़रा तुम्हारी प्रैक्टिस चमक उठे तब कोई क़दम उठाया जाय।"

अठाईस

इश्क़ पर ज़ोर नहीं है यह वही आतिश 'ग़ालिब'
कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।

बैडमिण्टन खेलने का बल्ला घुमाती हुई कुसुम बड़ी ख़ुश-ख़ुश अपने कमरे की ओर बढ़ी।

वह प्रसन्न थी क्योंकि आज खेल ख़तम होने के बाद मौक़ा पाकर अकेले में कमल ने जल्दी से उसका हाथ चूम लिया था।

इस अवसर पर कमल का चेहरा ऐसा दीख रहा था जैसे उस पर किसी ने जादू कर दिया हो.....कुसुम उस क्षण को जीवन-पर्यन्त नहीं भूल सकती थी।

जब वह विचारों में मग्न किसी मीठे गीत के बोल गुनगुनाती जल्द-जल्द कदम उठाती बढ़ी चली जा रही थी तब उसे एक दम माँ की आवाज़ सुनाई पड़ी।

"कुसुम!"

उसके क़दम रुक गये। जीवन में उसकी मां ने लाखों बार उसे उसका नाम लेकर पुकारा होगा। लेकिन.....लेकिन ....आज उसे माँ की आवाज़ न जाने कैसी सुनाई पड़ी! एक विचित्र झंकार, एक अनजानी भावना से कम्पित.....उसके क़दम रुक गये। लेकिन वह एक दम लौटकर माँ की ओर न देख सकी.....और फिर जब उसने

सिर घुमाया तो देखा कि वे बरामदे के कोने में पड़े तख्त पर बैठी हैं। यह कोना बैठने ही के काम में आता था और प्रायः इससे ड्राइङ्ग रूम का काम लिया जाता था। उस समय छत का बल्ब बुझा हुआ था, केवल टेबुल लैम्प जल रहा था जिसके कारण उस कोने का अधिकांश भाग स्वप्निल प्रकाश में डूबा था। केवल उमा देवी का चेहरा लैम्प की रोशनी में चमक रहा था। उनका चेहरा अत्यन्त गम्भीर था। उनकी भवों और माथे पर बाल पड़े थे।

"जी!" कुसुम ने जवाब दिया और उसके साथ ही उसने देखा कि उसकी माँ का एक हाथ तसवीरों के एक सुन्दर अलबम पर रखा था। वह अलबम कुसुम का था। उसमें उसने केवल कमल के चित्र इकट्ठे कर रखे थे। आज दोपहर को, जब कि उसकी माँ बाहर गई हुई थीं, उसने कमल के बहुत से चित्र, जो उसने पिछले कुछ दिनों में प्राप्त किये थे, उस अलबम में लगा लिये थे। उसने यह काम पूरा किया ही था कि माँ आ गईं। उसने जल्दी से अलबम तख्त पर बिछे हुए गद्दे के नीचे छिपा दिया और फिर उसे अलबम वहाँ से निकालकर किसी सुरक्षित स्थान पर रखने का मौका न मिला। जब कला उसे बुलाने आई तब जल्दी में उसे अलबम का ध्यान ही न रहा और इस समय जब उसने मां के हाथ में अलबम देखा, तब उसे अपनी भूल का अनुभव हुआ। उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। न जाने ममी उससे क्या कहें? वह धीरे-धीरे छोटे-छोटे कदम उठाती मां के निकट पहुँची। मां ने आज तक उसे कभी कोई कड़ी बात न कही थी। इसलिये कि वह उसे बहुत प्यार करती थीं। स्वयं कुसुम ने भी कभी जान-बूझकर ऐसी कोई बात नहीं की थी कि मां को शिकायत का मौका मिलता।

मां ने उसकी ओर सिर उठाकर नहीं देखा। वह उसी तरह सिर झुकाए बैठी रहीं। जब वह बिलकुल निकट पहुँच गई तब उसने देखा कि मां का हाथ कुछ हिला और उन्होंने अलबम को पकड़ लिया। कुछ

क्षणों तक अलबम उनके हाथ में मज़बूती से जकड़ा रहा, फिर हाथ आगे बढ़ा।

"यह तुम्हारा अलबम है ?"

"जी !" कुसुम ने अत्यन्त क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

कुसुम ने ऐसा अनुभव किया मानो उसका हृदय उछलकर उसकी हलक़ में अटक गया है।

"लो !" अलबम और आगे बढ़ा दिया गया।

कुसुम ने कांपते हुए हाथों से अलबम पकड़ा और उसे बग़ल में दबा कर चुपचाप खड़ी हो गई। उसको इस ख्याल से बड़ी परेशानी हो रही थी कि उसकी मां को न जाने कितना दुख है। लेकिन उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या कहे और क्या न कहे। वह इस बात की प्रतीक्षा कर रही थी कि मां बोले तो वह भी कुछ कहे।

"आज खेल खतम हो गया ?" यद्यपि स्वर में कोई अन्तर नहीं था किन्तु बात का रुख़ तो बदल गया।

यह सुनकर कुसुम की जान में जान आई और वह तनिक उत्साह से मां के पीछे की ओर तख्त पर बैठ गई और बोली—"जी माता जी ! आज बहुत मज़ा आया। अब मैं बहुत अच्छा खेलने लगी हूँ। पहले मोने बहुत अकड़ता था। जब कोई मेरे साथ खेलने को कहता तो वह जवाब देता, 'अजी छोड़ो, इस अनाड़ी के साथ कौन खेले ?' और जब खेलता तो मुझे हरा देता। आज फिर वह बढ़-बढ़कर बातें बनाने लगा तो मुझे भी ताव आ गया। मैंने उसे चैलेंज किया कि अगर उसमें कुछ दम है तो मेरे सामने आये, मुकाबिला कर ले। वह नाक चढ़ाकर बोला, 'अरी जा, बड़ी आई वहाँ से खेलने वाली।' मैंने कह दिया कि यह क्यों नहीं कहते कि मुझसे डरते हो। इस पर वह बहुत झुँझलाया। सब ने खूब तालियाँ बजाईं। आखिर वह भी ताव खाकर हाथ में रैकट लिये मेरे सामने आ गया। खेल शुरू हुआ तो उसने बढ़-बढ़कर रैकट

घुमाया लेकिन मैंने उसे हरा दिया। फिर तालियाँ बजीं। वह झुँझलाकर बोला, 'अजी यह तो यों ही संयोग से हार गए हम।' मैंने कहा, 'हिम्मत है तो फिर आओ मेरे सामने।' वह फिर आया तो मैंने फिर उसे हरा दिया। बस ममी, फिर कुछ न पूछिये कि उसका क्या हाल हुआ। मैंने उसे खूब ठेंगा दिखाया और मेरे साथ मिलकर सब ने उसे ख़ूब बनाया। सचमुच, बेचारे की आज ख़ूब गत बनी... ....''

"हूँ।" अब माँ की आवाज़ में फिर पहली वाली लोच आ गई। उन्होंने पूछा —"कमल की डिस्पेंसरी का क्या हाल है? चल रही है?"

"हां ममी।" कुसुम ने बच्चों के से अन्दाज़ में जवाब दिया— "अब तो लोग उनके यहां आने लगे हैं। कहते हैं सुबह के वक्त ज़्यादा रोगी आते हैं। सब लोग उनकी बड़ी तारीफ़ करते हैं। कला की माता जी कहती थीं कि कई लोग उनके पास आकर कहते थे कि आपने बहुत अच्छा किया जो अस्पताल खोल दिया। मुझे 'अस्पताल' शब्द पर बड़ी हँसी आई। उनकी माता जी कहती हैं कि जैसे-जैसे लोगों को पता चलेगा वैसे-वैसे आने वालों की गिनती और बढ़ती जायगी। जब मैं शाम को खेलने जाती हूँ तब दो चार रोगी वहां बैठे रहते हैं। सच ममी, कैसे ग़रीब मालूम होते हैं वे लोग। मैंने पहले कभी रोगी नहीं देखे थे। यों ही एकाध आदमी को बीमार पड़े देख लिया था लेकिन इतने रोगी मैंने कभी नहीं देखे। पर ममी, लोग क्यों बीमार होते हैं? क्या बीमारी भगवान की तरफ़ से आती है?"

"नहीं बेटी, भगवान की तरफ़ से बीमारी नहीं आती बल्कि बीमारी हमारी ही भूल का नतीजा होती है। इसी तरह आदमी और भी कई संकटों में फँस जाता है, जो उसकी भूलों के कारण ही आते हैं.....।"

कुसुम ने माँ की इस बात को एक खास इशारा समझा। वह चुप हो गई। माँ फिर बोलीं—"इसका मतलब यह है कि शाम के समय कमल

खेल भी नहीं सकता ?"

"नहीं जी, वह खेल लेते हैं। जब कोई रोगी नहीं होता तो वह खेलना शुरू कर देते हैं। अगर खेल के बीच में कोई आ जाय तो रैकेट किसी दूसरे को देकर स्वयं रोगी को देखने चले जाते हैं। कमल बाबू बैडमिण्टन बहुत अच्छा खेलते हैं। हाय, ममी! कभी आप उनको खेलते हुए देखिये तो हैरान रह जाइये।। उनका एक-एक अन्दाज़ और एक-एक ऐक्शन देखने के क़ाबिल होता है। आपको मालूम है, आपको मालूम है कला क्या कहती है ? कला कहती है, विलायत से पास करके आये हैं, इसलिये इतना अच्छा खेलते हैं लेकिन ममी, क्या बैड मिण्टन खेलने का इम्तहान पास किया जाता है ? नहीं किया जाता न ?"

माँ ने किंचित विलम्ब के बाद मन्द स्वर में कहा—"कुसुम ! कमल तुम्हारे ख्याल में अच्छे हैं ?"

उस समय बेटी मां के पीछे बैठी थी। मां उसका चेहरा नहीं देख सकती थी। इस सवाल पर गहरा मौन छा गया। कुसुम ने बोलने की चेष्टा की किन्तु बोल नहीं सकी। अन्त में उसने जवाब में अपनी गोरी-गोरी बाहें बड़े लाड़ से माँ के गले में डाल दीं।

मां ने निराश स्वर में कहा,—"लेकिन तुझे मालूम है कि दत्त बाबू.. उन्होंने तेरे बाबू जी से कह भी दिया है।"

उनतीस

मैं फसाना कह रहा था और वह खामोश था।

साँझ की बेला थी किन्तु अभी सूर्यास्त में आध-पौन घन्टे की देर थी।

कमल बरामदे के कोने में खड़ा एक रोगी की आँखों में दवाई डाल रहा था कि कला आती हुई दीख पड़ी। यह कोई असाधारण बात नहीं थी, क्योंकि जब तक वह यहां रहता कला और माला का आना जाना लगा रहता था।

लेकिन इस समय कला की मुद्रा से प्रकट होता था कि वह रोज़ की तरह साधारण ढंग से नहीं आई थी, किसी उदेश्य विशेष से आई लगती थी। कमल ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया। कला ने देखा कि रोगी सीधा-साधा देहती है तो उसने कहा—"कुसुम आई है।"

कमल को आश्चर्य हुआ। आखिर यह भी कोई कहने की बात थी! वह तो रोज़ आती थी, "फिर क्या?

"वह खेल नहीं रही है।"

'क्यों? तबीयत कुछ खराब है?

"नहीं।"

"तो भई फिर आखिर क्या बात है?"

"वह उदास है।"

इस पर कमल के होठों पर मुस्कान खेलने लगी—"अच्छा तो यह बात है! तुम उससे जाकर कहो कि उदास होने की ज़रूरत नहीं। कल हम उसे 'टाफ़ी' का डिब्बा ला देंगे।"

कला ने अब मामले का महत्व जताना आवश्यक समझा। बोली—"वह रो रही है।"

कमल का हाथ क्षण भर को रुका, "क्या कहती हो, रो रही है? वाह! अजीब लड़की है। मालूम होता है आज उसकी माता जी ने किसी बात पर उसे डाँटा है। अच्छा तो उसे यहाँ भेज दो।"

"मैंने कहा था कि चलो कमल जी के पास तो बोली कि वहां क्या बात होगी.......।"

"अरे, वह तो पगली है। जाओ उस भेज दो कहना कि मैंने बुलाया है, फ़ौरन,.....।"

उसके मुँह से 'फ़ौरन' शब्द निकला ही था कि कला यह जा वह जा! इसके बाद वह अपने कमरे में चला गया। एक स्त्री और एक बूढ़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने उनसे सवाल पूछने शुरू किये। लेकिन मन में उसे यह एक अजीब सी बात मालूम हो रही थी। कुसुम और रोना, दोनों बिलकुल विभिन्न चीज़ें थीं। इसी बीच में उसने देखा कि कुसुम बाहर बरामदे में सीढ़ियों पर से चढ़ती हुई चली आ रही है। वह अकेली थी। वह दबे पांव बोझिल क़दम उठाती हुई आई और कमल के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई।

कमल ने देखा कि उसके चेहरे पर गहरी उदासी छाई थी। लेकिन आँसुओं से धुली हुई उसकी आँखें और गाल अजब सलोना रंग लिये थे। डूबते हुए सूर्य की लाल रोशनी में उसका चेहरा और उसके भारी तथा अस्त व्यस्त बाल जगमगा उठे थे।

उसने धीमे स्वर में पूछा—"ह्वाट इज़ रॉंग (क्या गड़बड़ है)?"

कुसुम ने अँगरेज़ी में ही उत्तर दिया—"बहुत ज़्यादा गड़बड़ है।"

"क्यों ? कुशल तो है ?"

"अब इन लोगों के सामने क्या कहूँ?"

"अच्छा।" कमल ने भी अँगरेज़ी में कहा—"अब इस समय और कोई रोगी तो है नहीं, इन चार आदमियों की दवाई बनाने के लिये डिसपेंसरी में जाना है। वहां हम दोनों अकेले होंगे।"

पांच मिनट में उसने सामने बैठे हुए दो रोगियों के लिये नुस्खे लिखे और पूछा—"आप लोग शीशियां लाये हैं?"

इस पर उन दोनों ने तुरन्त अपनी रानों में दबी हुई अवश्यकता से बहुत अधिक बड़ी शीशियों का प्रदर्शन किया।

"अच्छा, तो आप लोग बरामदे में बैठिये, मैं दवाई तैयार कर लूं।"

उन लोगों ने खूब ज़ोर से सिर हिलाया, फिर उनके सिर रुक गये और तब वे उठे, घूमे और बाहर निकल गये।

कमल ने जल्दी से कुसुम की बांह पर हाथ रखकर कहा—"आओ, अन्दर चलें।"

अभी तक कमल ने यह अनुभव नहीं किया था कि सचमुच कोई खास बात हो गई है। वह यही समझे बैठा था कि कुसुम बच्चा ही तो है, किसी मालूली सी बात से घबरा गई होगी। अतएव उसने दवाई बनानी शुरू कर दी और बोला—"हाँ, तो कहो......मेरे कान तुम्हारी तरफ़ हैं।"

कुसुम ने उदास और चिन्तित स्वर में कहना शुरू किया—"कल शाम जब मैं खेल के बाद घर पहुँची तो अंधेरा हो चुका था। बाबू जी घर में नहीं थे। माता जी बरामदे में बैठी थीं। मैं अपने ध्यान में आगे बढ़ गई उन्होंने आवाज़ दी तो मुझे उनका स्वर कुछ बदला हुआ सा

लगा। यानी इतना बदला हुआ कि एक बार तो मेरी इतनी हिम्मत भी नहीं हुई कि एक दम घूमकर उनकी ओर देखूँ और जब मैंने देखा तो उनके हाथ में अलबम देखकर मेरा हृदय बस धक् से होकर रह गया।"

"वह अलबम कैसा था ?"

"वह अलबम !" कुसुम तनिक झेंपकर बोली—"आपसे मैंने जो आपके फोटो लिये थे उन्हें मैंने एक अलबम में चिपका दिया था। वही अलबम मेरी भूल से उनके हाथ लग गया।"

"ओह !" कमल ने कहा—"अच्छा तो फिर क्या हुआ ? वे नाराज़ हो गईं ?"

"नहीं, नाराज़ नहीं हुईं। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और अलबम मुझे दे दिया। फिर इधर-उधर की बातें करने लगीं......।"

"तो भई, आखिर इतना रोने धोने का क्या कारण है ?"

"बता रही हूँ।"

"बता भी डालो...मैं परेशान हो रहा हूँ।"

"इधर-उधर की बातों के बाद उन्होंने आपके बारे में पूछा...।"

"मेरे बारे में ! क्या ?"

"जी ! यही कि...यही कि...मैं...आप...मेरा मतलब है कि आप...मेरा मतलब समझ गये न आप ?"

"हाँ, समझना ही पड़ेगा...फिर क्या हुआ, यानी तुमने क्या जवाब दिया ?"

"मैं क्या जवाब देती ?"

"अरे वाह ! ऐसा सुनहरा मौक़ा खो दिया ! यानी तुमने कुछ भी नहीं कहा ?"

"मैं शर्मा गई।"

कमल ने बिलकुल फिल्मी प्रेमी के से अन्दाज़ में आँखों की पुतलियाँ घुमाकर आकाश की ओर देखा और फिर एक बनावटी आह भर कर चुप

हो रहा।

कुसुम बड़ी दिलचस्पी से उसकी गति-विधि को देख रही थी। उसके उदास चेहरे पर पहली की-सी रंगत और चंचलता आ गई और उसके होंठ एक प्यारी-सी मुसकान के साथ फूल की भांति खिलने लगे।

कमल ने अपने अंगूठे और उंगली की सहायता से उसकी ठोड़ी को धीरे से पकड़ कर ऊपर उठाया और पूछा—"अरी कुसुमी! भला शर्माना भी कोई जवाब है?"

"हाँ!" कुसुम ने सिर हिलाकर कहा और फिर वह हँस पड़ी, "आपको यह भी पता नहीं, लड़की का शर्माना भी एक जवाब ही तो होता है।"

"अरी, तू तो बड़ी सियानी है। हम समझते थे कि बस बिलकुल बुद्धू हो....अच्छा, तो अब यह बात समझ में नहीं आ रही है कि इतना रोने-धोने के क्या मानी हैं?"

"जी हाँ.... हुआ यह कि जब मैं शर्मा गई तो माता जी ने बड़े गंभीर स्वर में कहा—तुझे मालूम है कि तेरे बारे में दत्त बाबू ने तेरे बाबू जी से बात कर ली है?"

कमल के हाथ रुक गये। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, "अरे वाह दत्त बाबू! अच्छा, तो फिर क्या हुआ?"

"मैं खूब रोई.....।"

"बस?"

"बस।"

"लेकिन माता जी ने यह तो नहीं कहा कि उन्होंने दत्त बाबू की बात मान ली है?"

"नहीं, कुछ कहा नहीं......और आज सुबह ही सुबह स्वयं दत्त बाबू मुझसे मिलने के लिये आ धमके।"

तीस

हों पलकें नम निगाहें मुस्कुराएँ
खुशी में भी हो ग़म की चाशनी सी।

अभी तक कमल को कुसुम की बातों में से एक भी बात ऐसी नहीं नज़र आई जिससे उसके रोने-धोने का कारण समझ में आ सके।

सुबह दत्त के आने से तो कुसुम के प्राण ही छूट गये थे लेकिन कमल को इसमें भी कोई चिन्ता की बात नहीं दिखी। अतएव उसने कुसुम को इस प्रकार सम्बोधित किया मानो वह बिलकुल ना समझ बच्चा है।

"ओहो! तो दत्त साहब ने क्या बात की।"

"बात तो जो की सुनाती हूँ, लेकिन उनका व्यवहार बड़ा विचित्र लगा।"

"विचित्र लगा?"

"हाँ जी,...मैं अपने कमरे में आलामरी में एक किताब खोज रही थी....फिर न जाने क्यों मुझे ऐसा लगा मानो कोई और व्यक्ति भी कमरे में मौजूद है .. मैंने घूमकर देखा तो दत्त महाशय खड़े थे। लेकिन जिस ढंग से वे खड़े थे उससे तो मेरी चीख निकलते-निकलते रह गई..."

"क्यों, कैसे खड़े थे?"

"वह दरवाजे के पास एक मूर्ति की तरह खड़े थे। उनकी कमीज़,

कोट पैण्ट पर एक भी बल नहीं था। उनकी बाहें दोनों ओर बिलकुल सीधी होकर लटक रही थीं। उनकी आँखें मुझ पर जमी हुई थीं। मुझे देखकर भी जब वे उसी प्रकार खड़े रहे, कुछ हिले-डुले नहीं और न मुँह से कुछ बात की तो मुझे डर लगा......।"

"डर लगा, उस चुग़द से ?"

"अब मैं आपको क्या बताऊँ......।"

"अच्छा सुनो", कमल ने बात काटते हुए कहा—"अंधेरा हो गया है। अब किसी रोगी के आने की भी आशा नहीं। आओ जरा खेतों की तरफ़ टहल आयें।"

"अच्छा।"

दोनों हाथ में हाथ डालकर चल दिये। चलते-चलते कुसुम ने कहा—"मैं कहती हूँ, आप एक कम्पाउण्डर क्यों नहीं रख लेते जो दवा तैयार कर दिया करे। आखिर सभी काम आपको करने की क्या जरूरत है।"

"ठीक है....लेकिन मैं एक ऐसी नर्स की तलाश में था जो डिस्पेंसिंग भी कर सके और रोगियों की देखभाल भी। दर असल जिन दिनों मैं दूकान की खोज में दिल्ली जाया करता था तब एक ऐसी नर्स से मुलाक़ात हुई थी। उसने काम करने की इच्छा भी प्रकट की......बस, उसी के कारण मैंने किसी और को नौकर नहीं रखा.....कल से वह काम शुरू कर देगी।"

"बस, तब ठीक हो जायगा।"

"हाँ, तो दत्त के बारे और क्या बात सुनानी बाक़ी रह गई है ?"

"जी, तो बस मैंने देखा कि वह यों खड़े हैं जैसे वहाँ खड़े-खड़े उनके प्राण निकल गये हों और उनका शरीर उसी अवस्था में अकड़कर लकड़ी के समान हो गया हो.....मानो युग बीते जब उन्होंने उस जगह मुझे देखा था। फिर उनकी आँखें पथरा गईं। युग के बाद युग बीतता गया।

मानो युगों की गर्द उनके चेहरे, विशेष कर उनकी आँखों पर जमती रही हो......।"

"तुम बहुत भावुक लड़की हो......।"

"वह कुछ नहीं बोले तो मैंने चाहा कि मैं ही कुछ बोलूँ लेकिन मैं कुछ न बोल सकी। हम कुछ देर तक यों ही खड़े रहे। इतने में बाहर से कुछ बच्चों के हँसने-बोलने की आवाज़ें आने लगीं तो मुझे कुछ ढाढ़स सी हुई। मैंने महसूस किया कि मैं इसी दुनिया की बसने वाली हूँ और मेरे शरीर में हिलने-डुलने और ज़बान में बोलने की भी शक्ति है। और फिर मैंने हिम्मत से काम लेकर कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा, कि आइये, बैठिये।

"इस पर वे आगे बढ़े—कुर्सी की ओर नहीं, मेरी ओर। और जब वे इतने निकट पहुँच गये कि मैं अपने माथे पर उनकी साँस की हवा महसूस करने लगी तो उन्होंने मेरी आँखों में आँखें डालकर पहले तो कुछ क्षण मुझे घूरा और फिर बोले—'कुसुम ! मैं आपसे प्रेम करता हूँ, मैंने आपके बाबू जी से कह दिया है ...और उन्होंने हाँ कर दी है। अब मैं चाहता हूँ कि आप अपने विचारों को इधर उधर भटकने से बचाएँ। यह बहुत ज़रूरी है।'......इतना कहकर वह काठ के उल्लू की तरह घूमे और कमरे से बाहर निकल गये।"

यह सुन कमल को बहुत हँसी आई और बड़ी देर तक वह हँसता रहा फिर बोला—"अजीब आदमी हैं मिस्टर दत्त ! सचमुच उन्हें काठ का उल्लू कहना उचित है।"

कुसुम ने तनिक रुष्ट होकर कहा—"आपको हँसी आ रही है लेकिन सुबह से मेरा मन डूब सा रहा है। आखिर क्या होगा ?"

अब वे चलते-चलते आमों के एक छोटे से बाग़ के निकट पहुँच गये। कमल कुसुम की पीठ पर हाथ रखकर उसे एक पेड़ के नीचे ले गया। वहाँ वे दोनों एक दूसरे के आमने-सामने खड़े हो गये।

कमल ने कुसुम की ठोड़ी के नीचे उंगली रखते हुए उसका चेहरा ऊपर को उठाया और रात के पूर्ण सन्नाटे और तारों के मन्द प्रकाश में उनकी आँखें मिलीं। कमल ने दृढ़ स्वर में कहा—"देखो कुसुम! मनुष्य के जीवन में यह मंज़िल, जिसमें कि हम दोनों हैं, यद्यपि अस्थायी है लेकिन इसके परिणाम का बड़ा महत्व होता है। विशेषकर हम दोनों का मामला तो बिल्कुल ऐसा ही है.....अब हम एक दूसरे को भली प्रकार समझने लगे हैं, इसलिये यह आवश्यक है कि हम केवल रोमांस और भावुकता की दुनिया से निकलकर व्यवहारिक संसार में आएँ और अपने बारे में अनुभवहीन दुनिया की भाँति नहीं बल्कि सुलझे हुए विचारों वाले मनुष्यों की भांति ग़ौर करें।"

"ठीक है।" कुसुम ने कमल के कन्धे पर हाथ रखते हुए जवाब दिया—"और फिर, अब देखने वाले भी हमारे प्रेम के सम्बन्ध में सब कुछ जानने लगे हैं।"

"सच?"

"और नहीं तो क्या? प्रेम भला छिप सकता है। परसों ही तो हमारी धोबिन मुझ से कहने लगी कि आप दोनों की जोड़ी बड़ी ही भली लगती है।"

"अच्छा, तो कुसुम अब एक बात का मैं बिलकुल सच-सच जवाब चाहता हूँ।"

कुसुम ने तनिक और आगे बढ़कर कहा—"पूछिये, मैं बिलकुल ठीक-ठीक जवाब दूँगी।"

"अच्छा तो बताओ, इससे पहले कभी मिस्टर दत्त ने तुम पर अपना प्रेम प्रकट किया था, या कभी तुमने किया था... ...या फिर तुम्हारे व्यवहारों से उन्हें यह भ्रम हो गया हो कि तुम उनसे प्रेम करती हो?"

"हर बात का जवाब 'नहीं' है। मैंने उनसे कभी कोई ऐसी बात नहीं कही और न उन्होंने आज से पहले अपने मुँह से कोई ऐसी बात कही थी।

हाँ, वे मेरी ओर पहले से ही बड़ा ध्यान देते थे। अब मैं सोचती हूँ तो महसूस करती हूँ कि उनके मन में ऐसा विचार ज़रूर रहा होगा।"

"तुम बिलकुल ठीक कह रही हो ?"

"बिलकुल ठीक। आपको मुझपर सन्देह है ?"

"नहीं, बिलकुल नहीं... ...अच्छा, अब एक बात और पूछूँ ?"

"पूछिये।"

कमल ने उसका चेहरा दोनों हाथों में ले लिया जो उस समय एक बड़े गुलाब के फूल के समान दीख रहा था। बोला—"कुसुम ! तुम अपने हृदय को अच्छी तरह टटोलकर देखो और बताओ कि तुम्हें मुझ से और केवल मुझ से ही प्रेम है... ...।"

कुसुम का चेहरा उसके दोनों हाथों में टिका रहा। वह चुप रही। फिर उसके हाथों में कम्पन हुई किन्तु कोई शब्द नहीं निकला और फिर उसकी आँखों में एक धुँध सी नज़र आने लगी। यहाँ तक की वे आँसुओं से भर गईं.... ...कमल ने तुरन्त उसका सिर खींच कर अपनी छाती से लगा लिया.... ....।

"अब मैं स्वयं तुम्हारी माता जी से मिलकर इस बात का फैसला करूँगा।"

इकतीस

मैं मुज़्तरिब हूँ वस्ल में खौफ़े रक़ीब से

कुसुम की माता जी से पहले मिलने की योजना कमल ने इसलिये बनाई कि उसके पिता तो दत्त से कुसुम के बारे में 'हां' कर ही चुके थे। अब यदि माता जी का अशीर्वाद प्राप्त करने में वह सफल हो जाय तो उसका मतलब यह होगा कि उसे निन्नानवे प्रतिशत सफलता प्राप्त हो जायगी। क्योंकि जहां तक उसे पता चला था, उनके घर में पत्नी पति पर हावी थी। कुसुम के पिता की प्यारी तोंद और उनके चेहरे की मूछों के अतिरिक्त अन्य मर्दानगी के चिन्ह जैसे उमा देवी के सामने बिलकुल मिट जाया करते थे।

कमल ने कुसुम से कह दिया कि जिस दिन उसके पिता जी की रात की ड्यूटी हो, उस दिन वह उसे अवश्य खबर दे दे जिसमें कि वह पूरे इतमीनान से माता जी से बात कर सके। वह जानता था कि दत्त के बारे में कुसुम के पिता जब एक निश्चय पर पहुँच चुके थे तब बातचीत खतरे से खाली नहीं थी।

आखिर एक सांझ को, जब कुसुम खेलने के लिये आई तब उसने बताया कि आज पिता जी की रात के बारह बजे तक ड्यूटी रहेगी। मैं जल्दी चली जाऊंगी जिसमें कि यह सन्देह न हो कि हम इकट्ठा कोई सलाह करके आये हैं। आप साढ़े नौ बजे के क़रीब पहुँच जाइयेगा

क्योंकि उस समय तक माता जी घर के छोटे-मोटे कामों से फ़ुर्सत पा लेती हैं।

खेल के बाद जब कुसुम चली गई तब कमल ने नहा-धोकर भोजन किया। फिर उसने बड़ी सावधानी से एक सूट चुना, जिसका रंग गहरा सुर्मयी था। यह सूट उसके गोरे बदन पर खूब सजता था। उसके सिर के बालों में भी हलकी सुर्मयी धुंध सी दीख पड़ती थी। बालों के नीचे उसका दमकता हुआ माथा और फिर उसका गोल चेहरा और सुन्दर नक-शिख।

जब वह उमा देवी के घर के निकट पहुँचा तो उसके कदम रुक गये। क्षण भर को उसके शरीर ने फुरहरी सी ली। वह अंधेरे में खड़ा अपनी आशाओं के उस मन्दिर को देखने लगा। न जाने क्यों उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था। वह सोचने लगा कि यदि उन्होंने इनकार कर दिया तो क्या होगा। अब तक उसे कभी यह ख्याल तक नहीं आया था कि उमा देवी इनकार कर देंगी लेकिन न जाने क्यों अब उसके मन में फिर सन्देह उठ रहे थे।

वह बढ़ा। उसने देखा कि कुसुम की माता जी नित्य की भांति बरामदे में एक कोने में बैठी हैं। यह कोना वास्तव में बड़ी प्यारी जगह थी। नीचे ग़ालीचा, एक ओर एक तख्त, उस पर गद्दा और गाव-तकिये। उनसे जो स्त्रियां मिलने के लिये आतीं वे तख्त पर ही बैठती थीं। इधर-उधर कुछ कुर्सियां भी बिछी थीं। यद्यपि कोई अमीराना ठाट-बाट नहीं था किन्तु फिर भी हर चीज़ से उनकी सुरुचि का पता चलता था।

वे उस समय सादा सफ़ेद वस्त्र धारण किये तख्त पर बैठी कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ रही थीं। उनके बाल जो अब कुछ हलके पड़ गये थे, अब भी चमकते थे। उनके सफ़ेद बालों की संख्या बहुत अधिक थी। होठों और आंखों के कोनों में झुर्रियां पड़ चली थीं। मुँह में कुछ नकली दाँत थे इसलिये कल्ले अन्दर को धँसने से बच गये थे। उनको देखकर कमल ने अनेक बार सोचा था कि जब वे जवान रही होंगी तो काफ़ी सुन्दर होंगी।

वह नपे तुले क़दमों से बरामदे की सीढ़ियां चढ़ने लगा।

जैसे ही उसका पहला क़दम बरामदे में पड़ा, उमा देवी की आंखें उठीं। निगाहें मिलते ही कमल ने दोनों हाथ जोड़ दिये।

"नमस्ते माता जी।"

"खुश रहो बेटा।" यह कहते-कहते उनका चेहरा फूल की तरह खिल गया। कमल और आगे बढ़ा।

"आओ बैठो। वह कुर्सी खिसका लो।"

कमल कुर्सी खींचकर उस पर बैठ गया और अपने हाथों की ओर देखने लगा, क्योंकि वह तो यही प्रकट करना चाहता था कि वह बेवक्त और बिना किसी उद्देश्य के वहां आया है। उमा देवी ने उसके इस व्यवहार को बड़ों के सामने छोटों का स्वाभाविक संकोच समझ कुछ न ध्यान दिया। फिर उन्होंने शायद यह सोचकर कि वह कुसुम से मिलने आया है, कहा—"कुसुम अभी-अभी खाना खाकर अपने कमरे में गई है। आती ही होगी।"

कमल शर्मा कर हंसा फिर बोला—"जी, कोई बात नहीं। मैं ज़रा यों ही मिलने चला आया।"

"हाँ, तो इसमें हर्ज ही क्या है? बेटा, यह तुम्हारा घर है। जब और जिस समय जी चाहे आ जाया करो।"

अब कमल यह सोचने लगा कि बात कैसे शुरू की जाय। उसे इस उधेड़—बुन में देख उमा देवी ने कहा—"अब तो सर्दी बढ़ती जा रही है।"

"जी? जी...बहुत अच्छा मौसम है।"

"तुम तो बम्बई में रहते रहे हो। मैंने सुना है वहां मौसम बहुत अच्छा रहता है।"

"जी, जी हाँ। वहाँ न ऐसी सर्दी पड़ती है न गर्मी। शहर तो बड़ा

घना बसा है लेकिन हमने बम्बई से कुछ दूर पर घर बना लिया था और वहाँ काफ़ी शान्ति भी थी और आस-पास हरियाली भी।"

"लेकिन फिर भी वहाँ तुम्हारा जी नहीं लगा, क्यों?"

"क्या मैंने आपको बताया नहीं ? पिता जी की मृत्यु के कारण मेरा मन बहुत उदास हो गया। यद्यपि मृत्यु से कुछ ही समय पहले उन्होंने वह नया मकान बनवाया था। वे चाहते थे कि मेरे विलायत से लौटने पर वे मेरा विवाह करेंगे और उसी नये मकान में अपनी पुत्र-वधू को उतारेंगे। लेकिन वे ऐसा नहीं कर सके। मृत्यु ने उन्हें पहले ही इस संसार से उठा लिया.... ...।"

कुछ क्षणों तक उमा देवी पूर्ण निस्तब्ध रहीं किन्तु कमल ने अपनी बात जारी रक्खी, "मैंने मकान बेचना चाहा लेकिन जल्दी में कोई अच्छा ग्राहक नहीं मिल सका... ...।"

उमा देवी चुपचाप अपने विचारों में डूबी हुई थीं। कमल ने बात का रुख बदलते हुए कहा—"जी, आज मैं ज़रा एक खास काम से आया था......।"

उमा देवी बोलीं—"अपने पिता जी के बारे में कुछ और बताओ। उनका व्यक्तित्व बड़ा दिलचस्प मालूम होता है।"

कमल ने उत्तर दिया—"माता जी! उनके जीवन में एक बहुत गहरा भेद था। मुझे उसका अच्छी तरह पता नहीं चल सका। मेरे विचार में, जैसे कि मैंने पहले भी एक बार आपको बतलाया था, किसी लड़की का उनके जीवन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। वह उस लड़की को मरते दम तक नहीं भुला सके। वे वास्तव में बड़े भावुक आदमी थे। इसी कारण उनका हृदय इस दुःख को सहन नहीं कर सका। अपनी भावनाओं को अत्यधिक दबाने के कारण उनका हृदय दुर्बल होता चला गया। काश, उनको मेरी शादी का आनन्द प्राप्त हो सकता तो इससे उनकी आत्मा को अवश्य कुछ न कुछ शान्ति मिल जाती.....।"

कमल ने देखा कि उमा देवी ने दीवार की ओर मुँह फेर लिया। उसने सोचा कि वे उसकी बातों से काफ़ी प्रभावित हुई हैं और अपनी बात कहने का बड़ा अच्छा अवसर है। अतएव वह बोला—"मैं आज ज़रा खास काम से आया हूँ।"

"कहो।" उमा देवी ने बहुत धीमे स्वर में कहा।

अब फिर कमल को बड़ी कठिनाई का सामना हुआ कि वह कैसे अपने मन की बात कहे।

सहसा उमा देवी उठ खड़ी हुईं और बोलीं—"आओ, अन्दर चलें।"

कमल ने सोचा कि शायद काम बिगड़ गया। वह अनमने ढंग से उठकर उनके पीछे-पीछे हो लिया।

सोने वाले कमरे में पहुंचकर उमा देवी ने भीतर से द्वार बन्द कर लिया और स्वयं एक पलंग पर बैठकर सामने वाले पलंग पर कमल को बैठने का संकेत किया।

बिजली के तीव्र प्रकाश में वे एक देवी के समान दीख पड़ रही थीं। दोनों की आँखें मिलीं तो उमा देवी मुसकराकर बोलीं—"मैं जानती हूँ तुम क्या कहना चाहते हो।"

कमल का शरीर पसीने से तर हो गया। किंचित विलम्ब के बाद वे फिर बोलीं—"और मेरा जवाब......?"

फिर सहसा वे अपने पलंग से उठकर उसके पास आईं और उसके पलंग पर बैठकर दोनों कन्धों पर हाथ रख उसे अपनी ओर खींचा। इतने ज़ोर से कि कमल के घुटने नीचे ज़मीन पर आ रहे और उसका सिर उनकी गोद में।

उन्होंने दोनों हाथों में उसका चेहरा थाम लिया, उसी तरह जैसे वह नन्हा-मुन्ना बच्चा हो और फिर झुककर उसके माथे को उसी प्रकार चूम लिया जैसे एक माँ अपने बच्चे को प्यार करती है। फिर वे आँसुओं से भीगी आँखों से उसे देखती, थरथराती आवाज़ में बोलीं—"जुग-जुग बनी रहे दोनों की जोड़ी!"

बत्तीस

ज़िक्र उस परीवश का और फिर बयां अपना
बन गया रक़ीब आखिर था जो राज़दाँ अपना।

दस बजे के क़रीब कमल उमा देवी से विदा होकर प्रसन्नचित्त जब कमरे से बाहर निकला तो उसकी निगाहें कुसुम की खोज में इधर-उधर दौड़ीं लेकिन उसका कहीं पता नहीं था। उसने सोचा, सो गई होगी, इस समय जागाना उचित नहीं। कल यह सुखद सम्वाद उसे सुनाया जायगा।

अभी वह बरामदे से उतर कर कुछ ही क़दम बढ़ा था कि एक खम्भे के पीछे से कुसुम निकल आई और आते ही उसने उसका हाथ थाम लिया। वह साकार प्रश्न बनी हुई थी। "अरे! तुम यहाँ सर्दी में क्या कर रही हो?" उसने चलते-चलते उसे अपनी बांह के घेरे में लेते हुए महसूस किया कि उसका शरीर और कपड़े बिलकुल ठण्डे हो रहे हैं, "भई, यह क्या नादानी है! इतनी सर्दी में कब से खड़ी हो?" उसने तनिक नाराज़ी प्रकट करते हुए पूछा।

उसका स्वर कठोर था। इसका कारण सम्भवतः यह था कि अब वह उसकी हो चुकी थी और अब उसकी ज़रा सी तकलीफ़ उसके दुख और परेशानी का कारण बन सकती थी।

कुसुम ने शिकायत भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा और मुँह बिसूर कर बोली—"इस समय आपको ये बातें सूझ रही हैं ?"

कमल ने रुककर कुसुम के सजल नेत्रों की ओर देखा तो उसे खयाल आया कि सचमुच उसने बड़ी ज़्यादती की है।

"ओह ! माफ़ करना भई ......।"

"अच्छा बताओ, उन्होंने क्या जवाब दिया ?"

इस पर कमल ने बड़ी गम्भीर मुद्रा बना ली। कुसुम परेशान सी हो गई। यह देखकर कमल ने दोनों हाथों से उसके चेहरे से बाल हटाते हुए उसकी धनुष के समान भौं को प्रेम से चूमते हुए कहा—"यही उनका जवाब था।"

"सच ?"

"सच।"

फाटक से दो कदम बाहर निकल कर वह उसके साथ लगकर खड़ी हो गई। उसकी आँखें बन्द थीं। ऐसा लगता था मानो वह हमेशा इसी प्रकार खड़ी रहेगी। कमल ने उसके गाल को धीरे से थपथपाते हुए कहा—"अच्छा कुसुम ! तुम अन्दर जाओ। तुमने कोई गरम कपड़ा नहीं पहन रखा है।"

कुसुम ने झुरझुरी लेकर कहा—"अच्छा, लेकिन न जाने क्यों मुझे अंधेरे में डर लग रहा है।"

कमल हँस पड़ा, "अच्छा, तो मैं यहाँ खड़ा होकर तुम्हें देखता रहूँगा। जब तक तुम बरामदे के अन्दर न चली जाओगी मैं यहीं खड़ा रहूँगा।"

कुसुम हृदय पर पत्थर रखकर लौटी। उसकी आँखों में शिकायत की झलक थी.......कमल ने तनिक आगे बढ़कर कहा—"कल मिलेंगे और खूब बातें करेंगे। ठीक ?"

कुसुम ने सिर हिलाकर 'अच्छा' कहा और धीरे-धीरे वापस चल पड़ी।

वह उसको वापस जाते देखता रहा। जब वह बरामदे में पहुँच गई तब उसने घूमकर देखा तो कमल की केवल छाया सी दिखाई पड़ रही थी। उसने बड़े अन्दाज़ से अपना हाथ हिलाकर उससे विदा ली।

कुसुम के मकान के अन्दर चले जाने पर भी कमल कुछ देर खड़ा रहा। फिर सहसा उसके कान में किसी की आवाज़ आई—"आइये, अब चलें।"

कमल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सिर घुमाकर देखा, तो एक पुरुष को अपने निकट खड़ा पाया। वह कौन था?

ध्यान से देखनें पर उसने पहचाना कि वह मिस्टर दत्त थे।

"हलो मिस्टर दत्त!"

"आपकी मुहब्बत खींच लाई।"

"लेकिन मुलाक़ात का बड़ा अजीब ढंग अपनाया है आपने।" कमल ने हँसते हुए कहा और धीरे धीरे चलना शुरू कर दिया।

दत्त भी साथ-साथ चलने लगा, और रूखे स्वर में बोला—"मिस्टर कमल! कुछ लोग अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिये इससे भी अजीब ढंग अपनाते हैं।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

"कभी-कभी जान-बूझकर न समझना भी बड़ा लाभ पहुँचाता है।"

"आप पहेलियाँ बुझा रहे हैं।"

"लेकिन पहेलियाँ बुझाने का काम शुरू आप ही ने किया था।"

"क्यों, कुशल तो है?"

"अभी तक आपकी ओर कुशल है लेकिन इधर कुशल नहीं है।"

"क्यों? आपकी तबीयत तो ठीक है न? आज आप बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं...।"

"जिसके होश ठिकाने न हों वह बेचारा बहकी बहकी बातें न करे तो क्या करे ?"

"लेकिन आज ऐसी कौन सी बात हो गई जिसके कारण आपके होश ठिकाने नहीं रहे ?'

"यह आप पूछते हैं ?"

"क्यों, क्या मेरे पूछने में कोई हर्ज है ?"

"हर्ज तो नहीं है लेकिन अफ़सोस यह है कि आप ही ने मेरी यह हालत कर दी है और आप ही इस भोलेपन से पूछते हैं कि...।"

"मैंने ?"

"जी ! मेरा मतलब कुसुम से है।"

"कुसुम ?"

"जी !"

"ज़रा खोलकर बात कीजिये।"

"अब इससे अधिक खोलकर क्या कहूँ कि आपने मुझे तबाह और बरबाद करने के मंसूबे बना रखे हैं।"

"लेकिन मिस्टर दत्त ! आप ऐसा क्यों सोचते हैं ? मेरे ख्याल में हम दोनों की आपस में कभी कोई रंजिश भी तो नहीं हुई !"

"यह बिलकुल ग़लत है, और कृपा कर आप इतने भोले न बनिए। इससे मुझे और अधिक दुःख होता है।"

"लेकिन आप मुझ पर बिलकुल निराधार आरोप लगा रहे हैं।"

"निराधार कैसे ? क्या यह सही नहीं है कि आप कुसुम से विवाह करना चाहते हैं ? आप दोनों की बातों से प्रकट होता था कि आपने माता जी का आशीर्वाद भी प्राप्त कर लिया है। क्या यह सच नहीं है कि आपने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये पहले तो उस भोली-भाली लड़की को बहकाया..."

"बहकाया ! कृपा कर ऐसे शब्दों का प्रयोग न कीजिये। कुसुम मुझे प्यार करती है और मैं उसे प्यार करता हूँ।"

"प्यार ? उँह, भला उस भोली लड़की को प्यार का क्या पता ?"

"वह मुझे पसन्द करती है। आपको मालूम होना चाहिये कि उसकी आयु सोलह वर्ष से ऊपर हो चुकी है। और भारत में जब सोलह वर्ष की कोई लड़की किसी युवक को पसन्द करती है तो उसे सच्चे दिल से प्यार करती है। वह प्यार के बारे में सब कुछ समझती है।"

"लेकिन अगर आप न आते तो वह मेरी होती।"

"आपका यह ख्याल ग़लत है। आप मुझे सच-सच बताइए, क्या कभी उसने आपको प्यार किया है ? कभी आपके गले में अपनी बाहें डाली हैं ? कभी आपकी छाती के लिपटी है ? कभी उसने आपसे कहा था कि वह आपसे प्यार करती है ? कभी आपके सामने उसने यह बात स्वीकार की है कि उसके मन में आपके लिये स्थान है ? आप स्वयं ठन्डे दिल से सोचिये कि वह आपको प्यार करती थी या नहीं ?"

"लेकिन इसके बावजूद अगर आप दखल न देते तो वह मेरी और केवल मेरी होती। उसके पिता मेरे साथ उसका विवाह करने पर क़रीब-क़रीब राज़ी हो चुके हैं.......।"

"लेकिन यह सिर्फ धोखा देना है। कुसुम को, कुसुम के माता पिता को और स्वयं अपने आपको ....यदि मुझे इस बात का तनिक भी सन्देह होता कि कुसुम आपको प्यार करती है तो मैं कभी भी दखल न देता। लेकिन कुसुम ने कभी आपको प्यार नहीं किया। आप उसके पिता जी को बहकाकर उसे हथियाना चाहते थे........।"

यह सुन दत्त चलते-चलते रुक गया और दृढ़ स्वर में बोला—"लेकिन आपको यह मालूम होना चाहिये कि जब मैं किसी चीज़ को प्राप्त करने का निश्चय कर लेता हूँ तो उसे प्राप्त करके रहता हूँ।"

कमल को क्रोध आ गया। गर्म होकर बोला—"बहुत अच्छा साहब बहादुर, तो फिर प्राप्त करके रहिये।"

यह कह वह आगे बढ़ गया लेकिन दत्त वहीं पर खड़ा रहा और पीछे से पुकार कर बोला—"मिस्टर कमल! कुसुम यदि मेरी नहीं बन सकती तो याद रखिये कि वह आपकी भी नहीं बन सकेगी।"

कमल ने कोई उत्तर न दिया। मानो उसने यह बात सुनी ही नहीं।

तैंतीस

किस्मत की .खूबी देखिये, टूटी कहाँ कमन्द
दो-चार हाथ जब कि लबे-बाम रह गया।

अब एक ऐंग्लो इण्डियन नर्स भी काम करने के लिये आ गई थी। वह नर्स भी थी और कम्पाउण्डर भी। उसे रहने के लिये मकान ही का एक कमरा दे दिया गया था। देखने में वह योरोपियन दिखती थी लेकिन भारतीय ढँग की बनी हुई रोटी और सब्ज़ी बड़े चाव से खाती थी।

सब लोग नर्स को 'मेम साहब' के नाम से पुकारते थे। उसकी अवस्था चालीस वर्ष के लगभग होगी। बदन दोहरा, आँखें नीली, बाल भूरे, होंठ पतले, नाक सुन्दर और चेहरे पर छोटे-छोटे दाग़ थे जो बिलकुल निकट से दिखायी देते थे। बड़ी हँसमुख और मिलनसार स्त्री थी। भारी भरकम कमर के गिर्द लिपटे हुए स्कर्ट के नीचे से निकली हुई उसकी मोटी और सुडौल पिंडलियाँ .खूब दमकती थीं। उसके टखने बहुत पतले और पाँव छोटे थे। काफ़ी स्थूल होने पर भी वह बड़ी फुर्तीली थी। नपे-तुले कदमों के साथ इतनी तेज़ी से चलती कि देखने वाले को एकदम हँसी आ जाती थी, और वह सोचने लगता था कि इतनी मोटी स्त्री इतनी तेज़ी से कैसे चलती है। उसके आने से घर में खासी रौनक हो गई थी। विशेषकर बच्चों के 'पप्पा' अर्थात् लाला की उससे पहले दिन

से ही गाढ़ी छनने लगी। इसका परिणाम यह निकला कि कुछ ही दिन बीते थे कि लाला ने एक पतलून सिलवा ली।

उधर प्रकाश ने कमल और कुसुम के विवाह को व्यवहारिक रूप देने के लिये कुसुम के घर जाकर बातचीत को और आगे बढ़ाया। असल रुकावट कुसुम के पिता ही थे जो दत्त से क़रीब-क़रीब 'हाँ' कर चुके थे।

जिस दिन प्रकाश कुसुम के पिता से इस सम्बन्ध में बात-चीत करने गया, उस दिन कमल अनायास थोड़ा चिन्तित हो रहा था। खाने का समय हो जाने पर जब नौकर उसको बुलाने के लिये आया तो उसने यह कहकर टाल दिया कि प्रकाश बाहर गये हैं, जब वे आयेंगे तब सब लोग इकठ्ठा भोजन करेंगे। यद्यपि उस समय साढ़े ग्यारह बज चुके थे और उस समय वहाँ कोई रोगी भी मौजूद नहीं था। वह नर्स से गप-शप हाँक रहा था।

आध घण्टे के बाद उसे प्रकाश की सूरत दिखाई दी जो सीधा डिस्पेंसरी की ओर आ रहा था। लेकिन उसका मुँह लटका हुआ था। यह देख कमल ने सोचा कि अवश्य ही मामला खटाई में पड़ गया। उसने प्रकाश के वहाँ पहुँचते ही पूछा—"कहो भाई?"

"क्या कहूँ?"

"कैसी रही?"

"कैसे कहूँ?"

"अजब नालायक हो।"

"अजी साहब, नालायक आप हैं। भला सोचिये तो एक भूखा-प्यासा आदमी क्या बोल सकता है।"

अब कमल के दिल में आशा की किरण चमकी। हँसकर बोला—"यह बात है, अरे खाना क्या तुम्हें रसगुल्लों में दफ़न कर दूँगा, बोलो।"

"ओ० के०.....सब ठीक है। पर भई, कुछ पूछो नहीं। बड़ी

मुश्किल पेश आई। बड़ा टेढ़ा मामला आ पड़ा था। उन के घर में पूरी जंग छिड़ गई थी।"

"क्यों, क्या आपत्ति थी कुसुम के पिता को ?"

"आपत्ति कुछ नहीं। वे कहते थे कि कमल के बारे में मुझे न कोई शिकायत है और न मुझे उसकी कोई बात नापसन्द है। मुश्किल बात यही है कि मैंने दत्त को वचन दे दिया है।"

"अच्छा, तब फिर ?"

"फिर यह कि मैंने और उमा देवी ने समझाया कि वे दिन लद गये जब माता-पिता अपनी इच्छा से वचन दे दिया करते थे। अब तो जवान लड़की-लड़कों की राय लेना बहुत ज़रूरी हो गया !

"अच्छा ?"

"वे कहने लगे, भई मैं इन सब बातों को समझता हूँ लेकिन जिन दिनों दत्त ने कुसुम के सम्बन्ध में बातचीत की थी, उन दिनों और कोई लड़का हमारी नज़र में भी नहीं था। यह बात कुसुम की माँ को भी मालूम है। यह ठीक है कि हमने कभी 'हाँ' नहीं की लेकिन उसने मुझे इस बात से कभी मना नहीं किया। मैं इसका यही मतलब समझा कि उसे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन अब वह भी मेरे खिलाफ़ हो गई है।"

"उमा देवी ने इस आपत्ति का यह जवाब दिया कि जब उन्हें पता चला कि उनकी बेटी किसी विशेष व्यक्ति से प्यार करती है और उस व्यक्ति में कोई दोष नहीं तब उन्होंने अपना यह धर्म समझा कि अपनी बेटी के जीवन को सुखी और सफल बनाने के लिये जो कुछ भी उनसे बन पड़े, करें......तो भाई सारांश यह है कि अब यह बात पक्की हो गई क्योंकि आज यही तय हुआ है कि जिस तरह भी बन पड़े दत्त को यह बात साफ़-साफ़ समझा दी जाय और कह दिया जाय कि कुसुम का उनके साथ विवाह असंभव है।"

कमल ने उठकर प्रकाश को गले से लगा लिया और फिर वे हँसते

हुए भोजन के लिये चल पड़े। जैसे ही घर के लोगों को कमल और कुसुम की बात पक्की हो जाने का पता चला, सभी बड़े प्रसन्न हुए और उसी दिन शाम को एक शानदार 'टी पार्टी' का आयोजन किया गया।

शाम हुई तो अपनी डिस्पेंसरी में बैठे-बैठे कमल ने देखा कि 'लॉन' पर बड़ी मेज़ के चारों ओर कुर्सियाँ बिछाई जा रही हैं। उस पार्टी में बाहर का कोई आदमी नहीं बुलाया गया था। सब घर के ही लोग थे, इसलिये केवल एक ही बड़ी मेज़ बाहर निकाली गई थी।

नर्स भी प्रसन्न दिखती और अपनी प्रसन्नता का अनेक प्रकार से प्रदर्शन कर रही थी।

इतने में कमल ने देखा कि एक पुराना सा टाँगा डिस्पेंसरी के पास आकर रुका और उस पर से मिस्टर दत्त और एक और अपरिचित व्यक्ति उतरे।

वे निकट पहुँचे तो कमल ने देखा कि दत्त की हालत बिगड़ी हुई है। चेहरा फीका पड़ा हुआ है और वह बिलकुल निढाल हो रहा है। इसके पहले कि कमल कुछ पूछे, दत्त के साथी ने कहा कि इन्हें हैज़ा हो गया है। जल्दी से इनका मुआइना कीजिये।

दत्त को जल्दी से अन्दर ले जाया गया। जब से नर्स आई थी, उन्होंने दो पलंगों का भी प्रबन्ध कर लिया था। कमल ने बड़ी सावधानी से दत्त की देख-भाल की। वह बहुत कमजोर हो गया था। कमल ने 'एएटी कालरा' का टीका लगा दिया और उसे बिस्तर पर आराम से लिटा दिया। जब कमल दत्त का निरीक्षण कर रहा था तब उसे उसकी आँखों में एक विचित्र सा भाव दीख पड़ा, जिसे वह समझ नहीं पाया। आपस में अधिक बातें भी नहीं हुईं, केवल दत्त के साथी से पता चला कि तीन-चार घण्टा पहले कुसुम के यहाँ गये थे, वहीं पर दत्त को एकदम दस्त आने शुरू हो गये।

शाम को चाय-पार्टी के बाद कमल एक बार फिर दत्त को देखने

गया। वह आराम से सो रहा था। कमल ने नर्स को आदेश दिया कि उसे आराम से सोने दिया जाय।

दत्त के साथी को भी वहीं पर सोने के लिये कहा गया लेकिन उसने कहा कि वह अपने एक और मित्र के यहाँ जाकर सो रहेगा। लेकिन पहले उसे यह इत्मीनान हो जाय कि दत्त की हालत सुधर रही है।

रात को किसी के द्वार खटखटाने पर कमल की आँख खुल गई। उसे आश्चर्य हुआ। उसने समझा कि शायद दत्त की हालत अधिक बिगड़ गई है। दरवाज़ा खोला तो सामने पुलिस को खड़े पाया। कमल के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने घबराकर कहा—"कहिये !"

"आपको थाने चलना होगा।"

"क्यों, कुशल तो है ?"

"आपकी डिस्पेंसरी में मिस्टर दत्त मरे हुए पाये गये हैं। स्थिति सन्देहजनक है इसलिये... ...।"

कमल एक क़दम पीछे हट गया।

चौंतीस

तोहमत तुम्हारे क़त्ल की मुफ़्त पर लगी हुई।

दत्त की हत्या के अभियोग में गिरफ़्तार कमल अदालत के कटघरे में खड़ा था।

इस घटना को घटे तीन मास बीत चुके थे। जिस रात पुलिस कमल को थाने ले गई उसके दूसरे दिन न केवल दिल्ली बल्कि समस्त भारत के समाचार पत्रों ने भी यह समाचार बड़े मोटे-मोटे शीर्षकों के साथ छापा।

यह बात मशहूर हो गई थी कि कमल ने कुसुम को प्राप्त करने के लिए अवसर पाकर अपने मार्ग से अपने प्रतिद्वन्दी को हटा दिया। गुड़गांव में सब लोग इस बात से परिचित थे कि कुसुम और कमल एक दूसरे से प्रेम करते हैं। अनेक आदमियों ने उनको इकट्ठा खेतों, और गुड़गांव के आस-पास घूमते देखा था। साधारणतः इस सुन्दर जोड़ी को बहुत पसन्द किया जाता था और लोग उनकी तारीफ़ करते थे।

कमल तो बिलकुल भौंचक्का रह गया था। एक बार तो उसके होश बिलकुल उड़ गये। वह स्वयं कुछ सोचने में असमर्थ था। क्या अनजाने घृणा-भाव के अन्तर्गत उसने दत्त को मारफ़िया का इंजेक्शन दे दिया था? पोस्ट मार्टम से यह बात सिद्ध हुई थी कि उसे मारफ़िया का इंजेक्शन दिया गया और इसी कारण उसकी मृत्यु हुई है।

इन तीन महीनों में कमल की सूरत में ज़मीन आसमान का अन्तर आ गया था। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, कल्लों की हड्डियों तनिक उभर आई थीं। आँखों में उदासी झलकती थी।

अदालत में कुसुम, उसके माता-पिता, प्रकाश और उसके घर के सब लोग भी मौजूद रहते थे।

कुसुम बेचारी की दशा भी बड़ी दयनीय थी। उसकी आँखें मानो आश्चर्य और दुख के कारण खुली की खुली रह गई थीं। उसकी दृष्टि कमल के चेहरे पर जमी हुई थी जिसे वह एक क्षण के लिये भी हटाना नहीं चाहती थी।

पुलिस की ओर से अभियुक्त के विरुद्ध जो रिपोर्ट दी गई उसका विवरण संक्षेप में इस प्रकार था:—

दिनांक.........के दिन मिस्टर दत्त नई दिल्ली से अपने एक मित्र श्री देव प्रकाश मित्तल के साथ गुड़गांव में श्री रामचन्द्र त्रिपाठी से मिलने के लिए आए। उनसे उनकी पुरानी जानकारी थी इसलिये वे अक्सर वहां आया-जाया करते थे।

यह भी एक तथ्य है कि श्री त्रिपाठी की पुत्री कुसुम और मृतक श्री दत्त आपस में प्रेम करते थे। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाते दत्त ने लड़की के बाप से यह इच्छा प्रकट की कि वे उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दें। मृतक का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया, जैसा कि स्वयं श्री त्रिपाठी के बयान से प्रकट है।

इनके सम्बन्ध इस मंज़िल पर थे कि अभियुक्त गुड़गांव में आया और आते ही उसने कुसुम पर डोरे डालने शुरू कर दिये। यह विश्वास करने के कारण स्पष्ट है कि मृतक ने अभियुक्त को ऐसा करने से मना किया किन्तु अभियुक्त ने उलटे उसे धमकियाँ दीं।

अन्त में घटना के दिन जब मृतक श्री त्रिपाठी के यहां पहुँचा तब उसने वहीं भोजन किया। भोजन करने के बाद उसे कोई तकलीफ़ नहीं

महसूस हुई। फिर चार बजे उसने चाय पी—चाय का केवल एकप्याला। दिन ढले उसे पेट में कुछ गड़बड़ का अनुभव हुआ जिसके बाद लगातार कई दस्त आये। और यद्यपि वह इलाज के लिये अभियुक्त के पास नहीं जाना चाहता था किन्तु उस समय मजबूरी थी और दूसरा कोई उपाय नहीं था। इसलिये उसके मित्र श्री मित्तल उसे टाँगे में बिठाकर अभियुक्त की डिस्पेंसरी में ले गये।

अभियुक्त ने मृतक का मुआयना किया और फिर जब कि कोई और व्यक्ति वहां नहीं था तब उसने मारफ़िया का टीका लगा दिया और स्वयं वहां से चला गया।

यह एक तथ्य है कि इतने घृणित ढंग से किसी भी डाक्टर ने कभी किसी रोगी की हत्या नहीं की होगी।

श्री मित्तल से कहा गया कि वे भी वहाँ पर सो जायं किन्तु श्री मित्तल के मन में एक अनजाना सा भय बैठ गया था। इसलिये उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मृतक की दशा सुधर जाय तो वे अपने एक मित्र के यहां जाकर सो जायगें। बल्कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यदि बन पड़े तो वे मृतक को भी अपने साथ लेते जायं क्योंकि वे किसी अज्ञात भय के कारण अपने मित्र को भी वहां छोड़कर नहीं जाना चाहते थे।

इंजेक्शन के बाद अभियुक्त चाय पीने के लिये चला गया। नर्स भी उसके साथ गई लेकिन शीघ्र ही लौट आई। और वे काफ़ी देर तक आपस में इधर-उधर की बातें करते रहे। इसके काफ़ी देर बाद अभियुक्त आया और उसने मृतक को देखकर कहा कि वह सो रहा है इसलिये उसे आराम करने दिया जाय। इस पर सब लोग कमरे से बाहर निकल आए।

उस समय अभियुक्त ने श्री मित्तल से कहा कि वे अपने मित्र के यहां चले जायं क्योंकि अब दत्त का जीवन खतरे से बाहर है।

१२

इन तीन महीनों में कमल की सूरत में ज़मीन आसमान का अन्तर आ गया था। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, कल्लों की हड्डियों तनिक उभर आई थीं। आँखों में उदासी झलकती थी।

अदालत में कुसुम, उसके माता-पिता, प्रकाश और उसके घर के सब लोग भी मौजूद रहते थे।

कुसुम बेचारी की दशा भी बड़ी दयनीय थी। उसकी आँखें मानो आश्चर्य और दुख के कारण खुली की खुली रह गई थीं। उसकी दृष्टि कमल के चेहरे पर जमी हुई थी जिसे वह एक क्षण के लिये भी हटाना नहीं चाहती थी।

पुलिस की ओर से अभियुक्त के विरुद्ध जो रिपोर्ट दी गई उसका विवरण संक्षेप में इस प्रकार था:—

दिनांक.........के दिन मिस्टर दत्त नई दिल्ली से अपने एक मित्र श्री देव प्रकाश मित्तल के साथ गुड़गांव में श्री रामचन्द्र त्रिपाठी से मिलने के लिए आए। उनसे उनकी पुरानी जानकारी थी इसलिये वे अक्सर वहां आया-जाया करते थे।

यह भी एक तथ्य है कि श्री त्रिपाठी की पुत्री कुसुम और मृतक श्री दत्त आपस में प्रेम करते थे। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाते दत्त ने लड़की के बाप से यह इच्छा प्रकट की कि वे उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दें। मृतक का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया, जैसा कि स्वयं श्री त्रिपाठी के बयान से प्रकट है।

इनके सम्बन्ध इस मंज़िल पर थे कि अभियुक्त गुड़गांव में आया और आते ही उसने कुसुम पर डोरे डालने शुरू कर दिये। यह विश्वास करने के कारण स्पष्ट है कि मृतक ने अभियुक्त को ऐसा करने से मना किया किन्तु अभियुक्त ने उलटे उसे धमकियाँ दीं।

अन्त में घटना के दिन जब मृतक श्री त्रिपाठी के यहां पहुँचा तब उसने वहीं भोजन किया। भोजन करने के बाद उसे कोई तकलीफ़ नहीं

महसूस हुई। फिर चार बजे उसने चाय पी—चाय का केवल एकप्याला। दिन ढले उसे पेट में कुछ गड़बड़ का अनुभव हुआ जिसके बाद लगातार कई दस्त आये। और यद्यपि वह इलाज के लिये अभियुक्त के पास नहीं जाना चाहता था किन्तु उस समय मजबूरी थी और दूसरा कोई उपाय नहीं था। इसलिये उसके मित्र श्री मित्तल उसे टाँगे में बिठाकर अभियुक्त की डिस्पेंसरी में ले गये।

अभियुक्त ने मृतक का मुआयना किया और फिर जब कि कोई और व्यक्ति वहां नहीं था तब उसने मारफ़िया का टीका लगा दिया और स्वयं वहां से चला गया।

यह एक तथ्य है कि इतने घृणित ढंग से किसी भी डाक्टर ने कभी किसी रोगी की हत्या नहीं की होगी।

श्री मित्तल से कहा गया कि वे भी वहाँ पर सो जायं किन्तु श्री मित्तल के मन में एक अनजाना सा भय बैठ गया था। इसलिये उन्होंने इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मृतक की दशा सुधर जाय तो वे अपने एक मित्र के यहां जाकर सो जायगें। बल्कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यदि बन पड़े तो वे मृतक को भी अपने साथ लेते जायं क्योंकि वे किसी अज्ञात भय के कारण अपने मित्र को भी वहां छोड़कर नहीं जाना चाहते थे।

इंजेक्शन के बाद अभियुक्त चाय पीने के लिये चला गया। नर्स भी उसके साथ गई लेकिन शीघ्र ही लौट आई। और वे काफ़ी देर तक आपस में इधर-उधर की बातें करते रहे। इसके काफ़ी देर बाद अभियुक्त आया और उसने मृतक को देखकर कहा कि वह सो रहा है इसलिये उसे आराम करने दिया जाय। इस पर सब लोग कमरे से बाहर निकल आए।

उस समय अभियुक्त ने श्री मित्तल से कहा कि वे अपने मित्र के यहां चले जायं क्योंकि अब दत्त का जीवन खतरे से बाहर है।

श्री मित्तल ने कहा कि वे चले जायंगे लेकिन अभियुक्त के जाने के बाद भी श्री मित्तल वहां रहे, क्योंकि वे चाहते थे कि उनका मित्र जागे तो वे उससे कहकर वहां से जायं या यदि हो सके तो वे उसे भी वहां से लेते जायं, क्योंकि उन्हें यह बात याद थी कि कैसे मृतक अभियुक्त से अपना इलाज कराने पर जल्दी से राज़ी नहीं हुआ था।

इसी प्रकार रात के साढ़े दस बज गये। मृतक उसी तरह बेहोश या अभियुक्त के शब्दों में सोया पड़ा रहा। अतएव श्री मित्तल नर्स को लेकर अपने मित्र के पलंगके निकट पहुँचे कि शायद वह जाग जाय तो दो बातें हो सकें। लेकिन उन्हें कुछ बड़ी अजीब सी बात महसूस हुई। वह यह कि मृतक के सांस लेने के लक्षण बिलकुल नहीं दीख रहे थे। इस पर श्री मित्तल ने मृतक की कलाई थाम ली। हाथ बिलकुल ठन्डा था और नाड़ी बन्द थी। नर्स ने कुछ घबराकर स्टेथ्सकोप लगाकर हृदय की गति देखी किन्तु वह भी बन्द थी। फिर नर्स ने मृतक के पपोटे हटाकर पुतलियां देखीं तो वे बिलकुल निस्तेज थीं। यह सब देख नर्स की धीमी सी चीख निकल पड़ी। वह 'डाक्टर, डाक्टर' कहती हुई वहां से भागने लगी तो श्री मित्तल ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा कि अब डाक्टर को बुलाना बेकार है। अच्छा यह होगा कि आप मेरे साथ थाने चलिये। मुझे कुछ सन्देह हो रहा है। मैं आपको यहां छोड़कर जाऊँगा तो हो सकता है कि आप डाक्टर को सूचित कर दें और वह ग़ायब हो जाय। इस पर नर्स ने उत्तर दिया कि डाक्टर ने उसे नहीं मारा। श्री मित्तल ने कहा कि मैं यह नहीं कहता कि डाक्टर ने ही इसे जान से मारा है, लेकिन यह बड़ी अजीब बात है कि इंजेक्शन कें बाद से दत्त ने एक बात तक नहीं की। इसलिये मामला सन्देह जनक है। क्योंकि अगर आप मेरा साथ नहीं देंती तो इसका साफ़ मतलब यह होगा कि इस मामले में आपका भी हाथ है। श्री मित्तल के यह कहने पर नर्स उनके साथ थाने आ गई। वे लोग ग्यारह बजे के लगभग थाने पहुँचे और वहां से सब-इंस्पेक्टर पुलिस

राठौर सिंह मौक़ा वारदात पर तफ़तीश के लिये पहुँचे और अभियुक्त को हिरासत में ले लिया गया ।

पोस्ट मार्टम से यह बात स्पष्ट है कि मृतक मारफ़िया के इंजेक्शन के कारण ही मरा था ।

+ + +

यह रिपोर्ट बड़े विस्तार के साथ अदालत में पेश की गई और यह बात हर प्रकार से सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि कमल अपराधी है ।

पैंतीस

सुननी पड़ ही गई सब की बातें
बात कुछ भी न सही, हाँ न सही।

पुलिस अपना केस पेश कर चुकी तो अभियुक्त की ओर से जवाबी कार्यवाही आरंभ हुई।

गवाहों की पेशी और बहस आदि में कई महीने खर्च हो गये। अभियुक्त की ओर से प्रसिद्ध वकील श्री खन्ना पैरवी कर रहे थे जो अपनी कानूनी योग्यता के कारण दिल्ली और पंजाब में विख्यात थे। जवाबी बयान, गवाहों के बयान, जिरह और वकीलों की नोक झोंक का सार इस प्रकार है :—

सबसे पहली बात अभियुक्त के पक्ष में यह कही गई कि वह एक शिक्षित और सभ्य व्यक्ति था जो कई वर्ष विलायत में भी बिता चुका था और उसके जीवन का पिछला इतिहास ऐसा नहीं था जिससे उसकी अपराधी प्रवृत्ति का सुबूत मिले। लेकिन प्रकट है कि यह तर्क कानून की दृष्टि में विशेष महत्व नहीं रखता था। जहां तक कुसुम और उसके प्रेम का सम्बन्ध था, वह दोनों स्वीकार करते थे; अर्थात् दोनों एक दूसरे से प्रेम करते थे और करते हैं। संभवतः इस तथाकथित आरोप की नींव भी इसी बात पर रखी गई थी। लेकिन इस सम्बन्ध में कुछ बहुत ही महत्व-पूर्ण बातें ध्यान देने योग्य हैं।

१—कुसुम को इस बात की खबर नहीं थी कि मृतक दत्त के उसके घर आने-जाने का क्या मतलब है और न उसे कभी दत्त से प्रेम था ।

२—कमल से उसका प्रेम किसी दबाव के अन्तर्गत नहीं था बल्कि यह एक स्वाभाविक आकर्षण था जो उसने अनुभव किया ।

३—कमल को अपनी इच्छित लड़की का प्रेम प्राप्त था इसलिये उसका दत्त को अपनी राह में बाधक समझना असम्भव था ।

४—जहां तक लड़की के माता-पिता का सम्बन्ध था, उनकी स्वीकृति भी कमल को प्राप्त हो गई थी ।

५—इन दोनों के स्वाभाविक प्रेम और फिर लड़की के माता-पिता की स्वीकृति के कारण दत्त कमल को अपने मार्ग में बाधक समझता था जैसा कि उसके पत्रों से, जो उसने कुसुम को लिखे, प्रकट होता है ।

६—दत्त ने कुसुम को हाथ से जाते देख कमल पर एक अत्यन्त घृणित वार किया जिसमें कि उसकी आशाओं, आकांक्षाओं और उमंगों पर पानी पड़ जाय । "मीलार्ड !"श्री खन्ना ने जज को सम्बोधित कर कहना शुरू किया—'जब तक यह बात सिद्ध न हो जाय कि दत्त ने स्वयं अपनी हत्या कैसे की तब तक अभियुक्त को इस अभियोग से बरी नहीं समझा जा सकता लेकिन, उपरोक्त दलीलों और घटनाओं की रोशनी में इस तथ्य पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्कता नहीं रहती कि अभियुक्त मृतक दत्त को अपने मार्ग में बिलकुल बाधक नहीं समझता था । बल्कि इस बात के अवश्य ही स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि मृतक दत्त अभियुक्त को अपने मार्ग में जरूर बाधक समझता था । लेकिन इस मामले का सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि मृतक ने अभियुक्त की जान पर हमला करने की जगह अपनी जान ऐसी परिस्थितियों में दी कि उसका प्रतिद्वन्दी खाहमखाह उसमें फँस गया । यह एक दुर्बल, असफल, विवश लेकिन एक अस्वस्थ मस्तिष्क वाले मनुष्य का अन्तिम हथियार था । अब सवाल यह है कि उसने यह कैसे किया ।

उस दिन वह अपने मित्र मित्तल को तफरीह के बहाने अपने साथ गुड़गांव लाया जिससे कि वह गवाह रहे। उसका मित्र उसकी योजना से बिलकुल अनभिज्ञ था लेकिन इतनी बात वह मानता है कि दत्त का मन उदास हो रहा था। वह चिंतित था। यद्यपि उस समय मित्तल ने इस बात को विशेष महत्व नहीं दिया। कुसुम के माता-पिता द्वारा यह बात पक्की हो गई थी कि कुसुम और कमल दोनों का विवाह निश्चित हो चुका है। इन परिस्थितियों में मृतक को जो कुछ करना था उसकी योजना उसने पहले ही से तैयार कर रखी थी।

पोस्ट मार्टम की एक बात को बिलकुल छोड़ दिया गया है। वह यह कि मृतक के पेट की गड़बड़ और दस्त तथा मरोड़ वास्तव में आन्तरिक खराबी के कारण नहीं थे। बल्कि यह हालत बाहरी दवा इस्तेमाल करने से पैदा हुई। उसके बारे में अधिक विस्तार में जाने से प्रकट होता है कि किसी दस्तावर चीज़ के सेवन से मृतक की ऐसी दशा हुई। इस सम्बन्ध में पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट और सर्जनों की राय देखी जा सकती है इस एक बात से प्रकट होता है कि दाल में कुछ काला ज़रूर है। इसमें सन्देह नहीं कि मृत्यु मारफिया के इंजेक्शन से हुई लेकिन प्रश्न यह है कि किसी दस्तावर चीज के सेवन से पेट में यह गड़बड़ क्यों पैदा की गई?

डिस्पेंसरी में नर्स के अतिरिक्त एक बारह वर्ष का लड़का भी था, जिससे पुलिस ने जांच के सिलसिले में बिलकुल नज़र अंदाज़ कर दिया है। यद्यपि साधारणतः उस लड़के का इस सम्बन्ध में कोई महत्व नहीं था किन्तु इस घटना में वह एक बहुत ही महत्वपूर्ण गवाह है जिसे गवाही के लिये पेश किया जायगा।

घटना इस प्रकार है कि अभियुक्त उसे कालरा का साधारण इंजेकशन देने के बाद चाय पीने के लिये चला गया और जाते जाते उस लड़के को आदेश देता गया कि वह इंजेक्शन लगाने की सुई और उससे संम्बधित अन्य औज़ारों को उबलते हुए पानी में डाल कर साफ़

करने के बाद आलमारी में रख दे। अभियुक्त इससे पहले भी इंजेक्शन का काम होने के बाद सुई को उबलते पानी में साफ़ करके ही आलमारी में रखता था उस समय डिस्पेंसरी की चाभियों का गुच्छा, लड़के के बयान के अनुसार, आलमारी में लटके हुए ताले के साथ लटक रहा था। अभियुक्त का आदेश पाकर लड़के ने सुई आदि को पानी में डाला और स्वयं डिस्पेंसरी की कुछ चादरें जो धूप में पड़ी थीं, उठाने के लिये बाहर गया। उस समय दत्त के कमरे में कोई नहीं था। लड़के को चादरें तह करके और उन्हें संभाल कर रखने में कुछ मिनट लग गये। और जब वह वापस आया तो उसने देखा कि सुई स्प्रिट-लैम्प पर उबलते हुए पानी से बाहर पड़ी है और चाबियों का गुच्छा आलमारी के ताले की जगह रोगी के निकट धरी हुई तिपाई पर रखा है। मारफिया के टीके की शीशी चारपाई के नीचे दीवार के साथ लुढ़का दी गई थी। और साथ ही मी लार्ड! याद रहे कि अभियुक्त इस बीच में वापस नहीं आया जैसा कि स्वयं श्री मित्तल ने स्वीकार किया है। मृतक की बाँह पर दो इंजेक्शनों के चिन्ह पाये गये। यानी एक वह असली जो अभियुक्त ने लगाया था और दूसरा मारफिया का जो स्वयं मृतक ने लगाया। मेरे विचार में यह कहना बेकार होगा कि हो सकता है पहला इंजेक्शन अभियुक्त ने मारफिया का ही लगाया हो लेकिन प्रश्न यह उठता है कि दूसरा इंजेक्शन किसने लगाया, और क्यों? कालरा इंजेक्शन का ट्यूब स्वयं नर्स ने अभियुक्त के हाथ में दिया था जैसा कि उसने अपने बयान में कहा है।

हमारी बहस तीन प्रश्नों पर केन्द्रित रहेगी। पहला यह कि क्या अभियुक्त के मार्ग में दत्त किसी तरह भी बाधक था? और क्या अभियुक्त को कुसुम के प्राप्त करने के लिये मृतक की हत्या करनी आवश्यक थी, जब कि कुसुम उसे दिलोजान से चाहती थी और उसके माता-पिता की ओर से उन्हें विवाह करने की अनुमति मिल गई थी!

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या मृतक ने यह जानते हुए भी कि वह जिस

लड़की को पसन्द करता है वह उसे नहीं चाहती, उस पर डोरे डालने की कोशिश नहीं की और बाद में अपने पत्रों में उसने कुसुम को तबाह और बरबाद कर देने की धमकियां नहीं दीं ? इस बात के लिखित प्रमाण मौजूद हैं, जिसमें न केवल उपर्युक्त बातें सिद्ध होती हैं बल्कि यह भी साबित होता है कि उसके मन में अभियुक्त के विरुद्ध तीव्र घृणा का भाव विद्यमान था ।

तीसरी बात यह है कि क्या इस बात का पक्का सुबूत नहीं मिलता कि मृतक ने बड़े ही घृणित ढंग से अपनी पराजय का बदला लेने के लिये अपनी हत्या स्वयं ही की ?"

× × ×

अभियुक्त के विरुद्ध और उसके पक्ष में जो बयानात थे उनका यही सार था । इन बातों पर बहस-मुबाहसे, जिरह और गवाहों के बयान आदि सब कार्यवाहियों में सोलह महीने के लगभग बीत गये । अन्त में फैसले की तारीख निश्चित कर दी गई ।

छत्तीस

गिरी है जिस पै कल बिजली वो मेरा आशियाँ क्यों हो ?

जिस दिन इस सनसीखेज़ मुक़दमे का फ़ैसला सुनाया जाने वाला था, उस दिन अदालत का कमरा खचाखच भरा हुआ था।

उमा देवी, उनके पति, कुसुम, प्रकाश, एम० मोने, उसकी दोनों बहनें, माता-पिता और इनके अतिरिक्त गुड़गाँव के और बहुत से लोग भी उपस्थित थे जो अदालत के कमरे से बाहर तक फैले हुए थे।

अभियुक्त को अदालत के कठघरे में लाया गया। पहले कुछ महीनों में कमल के चेहरे पर इस घटना की प्रतिक्रिया के जो गहरे चिन्ह दीखते थे उनमें अब बहुत कमी आ गई थी। उसके जीवन का यह पन्ना इतना अचानक उलट गया था कि वह बड़ी कठिनाई से सँभल सका। अब उसका स्वास्थ्य बहुत अधिक गिरा हुआ नहीं था किन्तु उसकी काली आँखों की गहराई में एक विचित्र सी उदासी घर कर गई थी।

जूरी ने एक मत से अभियुक्त को बेगुनाह घोषित किया।

योग्य जज ने अपना लम्बा बयान पढ़कर फैसला सुनाते हुए कहा कि अभियुक्त कानून की दृष्टि में बिलकुल बेगुनाह है और उसे सम्मान के साथ बरी किया जाता है।

कमल को जैसे अपने कानों पर विश्वास नहीं आया। वह लोगों के जमघटे में अदालत से बाहर निकला। उमा देवी ने फैसला सुना

तो उनके उतरे हुए चेहरे पर रौनक़ आ गई और वह जहाँ की तहाँ बैठ गईं। कुसुम ने अपनी बाँहें, जो पहले गदराई हुई थीं किन्तु अब सूख गई थी, माँ के गले में डाल दीं।

जब कमल अदालत से बाहर निकला तो कुछ दोस्त फूलों के हार ले आए और हर तरफ़ से बधाई की आवाज़ें आने लगीं।

प्रकाश उसके मुक़दमे का फ़ैसला सुनने के लिये छुट्टी लेकर आया हुआ था। दोनों गले मिले।

मुक़दमे की कार्यवाही दिल्ली में हुई थी, इसलिये वे सब दिल्ली से गुड़गाँव आ गये। वहाँ पर कमल ने पुराने खेत, अपनी डिस्पेंसरी, खुले मैदान और अन्य जानी पहचानी चीजें देखीं।

दो-तीन दिन तक उसकी विचित्र मनस्थिति रही। जैसे उसने अभी-अभी कोई डरावना स्वप्न देखा हो। अपने इर्द-गिर्द घूमने-फिरनेवाले उसे छाया की भाँति दिखाई पड़ते थे।

× × ×

प्रकाश को बहुत कम छुट्टी मिली थी, अतएव उसने चौथे दिन कमल से कहा—"भई अब मैं तो जाऊँगा। तुम अब सुस्ती झाड़ डालो और अपना काम शुरू कर डालो फिर से।"

कमल ने पहले तो कोई उत्तर नहीं दिया और फिर धीमे स्वर में बोला—"प्रकाश! अब मेरा यहाँ रहना नामुमकिन है। मेरा मन इस जगह से उचाट हो गया है। इस स्थान की हैसियत मेरी भावनाओं के मरघट की-सी होकर रह गई है। अब मैं यहाँ से वापस बम्बई चला जाऊँगा। वहाँ अपना मकान भी मौजूद है, वहीं रहूँगा। मैं वहाँ से भागकर यहाँ आया था लेकिन अब मैं महसूस करता हूँ कि मुझे हार्दिक शान्ति अपने पिता जी के बनाए हुए मकान में जाकर ही प्राप्त होगी।"

"अरे वाह! इस तरह बच्चों की सी बातें न करो। अब तुम्हें चाहिये कि कुसुम से विवाह करके यहीं पर सुख-चैन से जीवन बिताओ।"

'नहीं, अब मैं शादी नहीं करूँगा।"

"क्या—कुसुम से शादी नहीं करोगे ? यह क्या कहते हो ? जानते हो, उसने यह सवा साल तुम्हारी याद में किस तरह काटा है...?"

"कुसुम से क्या, मैं किसी से शादी नहीं करूँगा। प्रकाश ! भाग्य में हम दोनों का संयोग नहीं लिखा था नहीं तो मुझ पर इतनी बड़ी विपदा क्यों आती....अब तो मुझे शादी के नाम से ही नफ़रत हो गई है। कल मैं तुम्हारे साथ ही यहाँ से रवाना हो जाऊँगा।"

"और कुसुम ? जब से आये हो वह तुम्हारा मुँह ताक रही है लेकिन तुम हो कि...।"

"कुसुम जवान है। उसकी जिस किसी से भी शादी हो जायगी, वह उसे खुश कर लेगा।"

"बको मत।"

"प्रकाश !" कमल ने दृढ़ स्वर में कहा—"यह मेरा पक्का और अन्तिम निर्णय है। तुम नहीं जानते कि इस सवा साल में मेरे अन्दर क्या परिवर्तन हो गया है। मेरे लिये यह दुर्घटना कोई साधारण दुर्घटना नहीं थी।"

उसी दिन दोपहर के समय कमल ने कुसुम को पत्र लिखा:—

"प्रिय कुसुम !

तुमको यह पत्र पाकर आश्चर्य भी होगा और निराशा भी, क्योंकि मैं एक ऐसी बात कहने जा रहा हूँ, जो तुम्हारी आशाओं के सर्वथा विपरीत होगी। और वह बात यह है कि मैं तुम्हारा जीवन-साथी नहीं बन सकता। यद्यपि यह बड़ा अन्याय होगा तुम्हारे प्रति, लेकिन मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ, इसके पक्ष में मेरे पास कोई तर्क नहीं है। बस, यह समझो कि मेरी मानसिक दशा ही ऐसी हो गई है। इस अचानक दुर्घटना का मेरे मस्तिष्क पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि मेरे मन से विवाह करने और अपनी प्यारी पत्नी के साथ सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करने की सारी खुशी और उमंग खतम हो गई।

तुम यही समझ लो कि यह सब संयोग का खेल है, नहीं तो मुझ पर ऐसी विपदा क्यों आती ?

यह बात नहीं कि मैं और किसी स्त्री से विवाह करके प्रसन्न रह सकूँगा बल्कि अब विवाह का विचार ही मन से निकाल देना है। जिसे मैंने प्यार किया था, जब उसी को अपनी न बना सका तब और किसी का सवाल ही नहीं पैदा होता।

तुम्हारे मन में मेरे लिये जो भाव हैं और तुम जिस तीव्रता से मुझे चाहती हो और तुम्हें मुझसे जो आशाएँ हैं, मैं उनसे अनभिज्ञ नहीं हूँ। ऐसी परिस्थिति में मेरी जो ज़िम्मेदारी है वह भी मैं समझता हूँ और वास्तव में सच्चे दिल से मैं यह अनुभव करता हूँ कि इस तरह पीछे हटने के पक्ष में मैं कोई उचित तर्क नहीं दे पा रहा हूँ। तुमको इस बात का अधिकार है कि तुम मुझसे इस धोखेबाज़ी के लिये जवाब तलब करो। लेकिन मैं तुमको कैसे बताऊँ कि मैं इस दुर्घटना को और इस दुर्घटना के पहले तक की कुल घटनाओं को अपने मन से बिलकुल भुला देना चाहता हूँ। आस-पास के जाने पहचाने स्थान, जिनसे मेरी सुखद स्मृतियाँ सम्बद्ध हैं, अब मुझे तनिक नहीं भाते। अब मै इस जगह नहीं रह सकता। इस जगह की किसी चीज़ को अपनाना नहीं चाहता कि मुझे इस घटना की याद फिर आये। मैं अतीत से भाग जाना चाहता हूँ—हमेशा-हमेशा के लिये भाग जाना चाहता हूँ।

यह सही है कि मैं कोई उचित तर्क नहीं उपस्थित कर सका। मेरे मन की जो स्थिति है वह भी बड़े अधूरेपन से प्रकट कर सका हूँ। इस लिये मैं तुमसे केवल क्षमा चाहता हूँ। मुझे आशा है कि तुम मेरा विचार त्याग कर किसी अन्य भले पुरुष को अपने जीवन का साथी बना लोगी और मेरी कामना है कि वह तुम्हें सदैव प्रसन्न रखे।

अब मुझसे कुछ और नहीं लिखा जाता।

तुम्हारा—

अभागा कमल।

यह पत्र लिखकर उसने बिना टिकट के लिफ़ाफे में बन्द कर दिया और उसे प्रकाश के हवाले करते हुए कहा कि वह मोने से कह दे कि हमारे जाने के बाद वह यह पत्र कुसुम को दे दे, इससे पहले नहीं।

सैंतीस

एक टूटे से मक़बरे के क़रीब, एक हर्सी जूए-बार बहती है।
मौत कितना ही एतराज़ करे, ज़िन्दगी बेक़रार रहती है॥

गाड़ी सुबह पांच बजे के करीब स्टेशन पर पहुंचती थी। प्रकाश ने कमल से कहा कि मैं मोने के साथ सामान लेकर चार ही बजे यहाँ से चल दूँगा। तुम चाहे रुककर आ जाना। कमल ने कहा कि वह उनके साथ ही जायगा। लेकिन जब सुबह चार बजे उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि प्रकाश आदि बिलकुल तैयार बैठे थे। कहने लगे—"तुम्हें हमने जगाया नहीं, कि बेकार नींद खराब होगी। अब हम सामान लेकर चलते हैं. तांगा बाहर खड़ा है। तुम मोने की सायकिल लेकर चले आना।

कमल ने जल्दी से मुँह हाथ धोकर कपड़े पहने और एक प्याली चाय पी। फिर प्रकाश के माता-पिता आदि से विदा होकर मोने की सायकिल पर सवार हुआ। अभी गाड़ी आने में बीस मिनट बाक़ी थे।

स्टेशन क़स्बे से काफ़ी दूर है। पर जब कमल स्टेशन से एक या डेढ़ फर्लाङ्ग इधर ही था तभी उसे कोई स्त्री पैदल चलती हुई दिखाई पड़ी। तारों के मन्द प्रकाश में कुछ साफ़ नहीं दीख रहा था। जब वह निकट पहुँचा तो उसे पता चला कि वह महिला उमा देवी थीं।

कमल तुरन्त सायकिल से उतरा और उसने दोनों हाथ जोड़कर

नमस्कार किया। उमा देवी के शुष्क होंठों पर मुसकराहट उत्पन्न हुई और वे बोलीं—"बेटा! तुम तो हमसे मिले बिना ही चले जा रहे थे। हमने सोचा खुद ही जाकर मिल लें।"

कमल बड़ा लज्जित हो रहा था। हकलाकर बोला—"जी जी बात....जी बात..."

"कोई बात नहीं...।" उमा देवी ने बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तुम हमें बिलकुल नहीं भूल गये। क्योंकि तुम्हारी चिट्ठी कुसुम को मिल गई थी। वह मैंने भी पढ़ ली है।"

अब तो कमल के हाथ के तोते उड़ गये। और भी हकला कर बोला—"वह...वह...वह तो...मैंने....।"

"हाँ हाँ, ठीक है। प्रकाश ने तुम्हारे हुक्म के खिलाफ़ वह चिट्ठी तुम्हारे जाने के पहले ही हमें पहुँचा दी थी।"

"मैं बहुत लज्जित हूँ। मैं क्षमा चाहता हूँ...मगर...वह... देखिये न..."

उमा देवी उसे नरमी से सड़क से हटाकर खुले खेत में ले गईं, जहाँ अनन्त आकाश में चमकते हुए तारों का मन्द प्रकाश फैला था और शीतल प्रभात-समीर बह रहा था।

अभी गाड़ी आने में पन्द्रह मिनट बाकी थे इसलिये कमल उमा देवी के साथ हो लिया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या बात होगी और उसका उसे क्या उत्तर देना होगा।

उमा देवी ने सहसा रुककर उसकी आँखों में आँखें डाल धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में कहीं—"चाहे आदमी किसी भी अवसर पर कितना भी धोखेबाज़ बन जाय किन्तु यह बात कभी सुनने में नहीं आई कि कोई बेटा अपनी मां को छोड़कर भाग निकला हो।"

कमल कुछ न बोला।

"बेटा ! तुम्हें पता है न, कि तुम्हारे पिता जी जीवन भर किसी लड़की के प्रेम में तड़पते रहे ! जो दशा उनकी रही उससे तुम अपरिचित नहीं हो... हूँ ?"

"जी !"

उमा देवी ने किंचित् रुककर कहा—"वह लड़की मैं हूँ ।"

"आप ?"

"हाँ, मैं ! सुबूत, तुम्हारे पिता जी के ये पत्र हैं जो उन्होंने मुझे उस समय लिखे थे....।"

कमल अवाक् उमा देवी की ओर देख रहा था ।

"तुम्हें आज यह भेद मालूम हुआ है, मुझे पहले ही से इस बात का पता चल गया था कि तुम किस बाप के बेटे हो और शायद अब तुमको इस बात का अनुभव हो गया होगा कि हम दोनों वास्तव में एक दूसरे के कितने निकट हैं ।

कमल चुपचाप उमा देवी के चेहरे की ओर देखे जा रहा था, मानो आज उसे पहली बार देख रहा हो ।

'मैं भी कभी जवान थी और तुम्हारे पिता भी । हम दोनों एक दूसरे के हो गये । कमल बेटा ! यह प्रेम और कोमल भावनाओं की बड़ी सुन्दर किन्तु दुखान्त कहानी है । एक दूसरे के होकर भी, एक दूसरे को अपना मानकर भी हम एक दूसरे के न हो सके । मैदान छोड़कर मैं भागी थी । मैं तुम्हारी तरह संयोग के गोरख धन्धे में फँस गई थी । मैं समझती थी कि यह सब संयोग के कारण ही होता है लेकिन यह बात अब मेरी समझ में आई है कि यदि यह संयोग किसी दैवी इच्छा या आदेश के अनुकूल होते हैं तो मैं जीवन पर्यन्त अपने पति के स्थान पर मन ही मन में किसी पर-पुरुष की पूजा करने पर क्यों विवश रही और तुम्हारे पिता मुझे छोड़ फिर जीवन-पर्यन्त क्यों किसी और को न अपना सके । यदि संयोग किसी दैवी इच्छा का प्रतीक है तो फिर

निन्नानबे प्रतिशत भारतीय विवाह असफल क्यों रहते हैं ? याद रखो, जिस देश में अप्रसन्न जोड़े एक-दूसरे के साथ रहने पर बाध्य किये जाते हैं वहाँ के लोगों का चरित्र और नैतिक स्तर कभी ऊँचा नहीं हो सकता। वे कभी अच्छे नागरिक नहीं बन सकते. . .।"

उमा देवी क्षण भर को रुकीं और फिर बोलीं—"तुम अपने पिता की तरह अत्यधिक भावुक हो। तुम बच्चों की सी बातें कर रहे हो। तुम जीवन को अबोध बालक के समान देख रहे हो। लेकिन बेटा! अब तुम बड़े हो गये हो। तुम्हें बड़ों की तरह ज़िन्दगी का मुक़ाबिला करना चाहिये। यह क्या कि एक घटना तुम्हारे पूरे जीवन को उलट-पुलट कर रख दे। बेशक तुम पढ़े लिखे हो, लेकिन एक बात तुम नहीं समझ सके कि यह घटना केवल तुम्हारे जीवन में नहीं घटी, बल्कि यह कुसुम और तुम्हारे दोनों के जीवन में घटी है। तुम दोनों एक हो चुके थे। और एक हो जाने के बाद बुरी-भली बात जो भी होगी वह एक के साथ नहीं, दोनों के साथ होगी। तुम्हें मालूम नहीं, कुसुम के खाने-पीने और खेलने-कूदने के दिन हैं, लेकिन सारा गुड़गांव इस बात का गवाह है कि तुम्हारी अनुपस्थिति में एक दिन भी कुसुम को किसी ने खेलना तो दूर रहा हँसते और मुसकराते भी नहीं देखा। क्यों? इसलिये कि वह तुम्हारे व्यक्तित्व का ही एक अंश है। वह तुमसे घुल-मिल कर एक हो गई है। लेकिन तुम हो कि अपने अर्द्धांग को छोड़े जा रहे हो और समझते हो कि बड़ा तीर मार रहे हो. . .एक बार मैंने अपनी स्वर्गीया मां की आत्मा की शान्ति के लिये अपने होनेवाले स्वामी को अपने आप से अलग कर दिया लेकिन अब मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि स्वयं इतनी अशान्त रहकर और एक ऐसे व्यक्ति को, जो मेरा और केवल मेरा हो चुका था, जीवन पर्यन्त अशान्त रखकर मैं अपने माता-पिता की आत्मा को रत्ती भर भी शान्ति नहीं पहुँचा सकी.......आज तुम शान्ति की खोज में निकले हो लेकिन वास्तव में शान्ति को पीछे छोड़े जा रहे हो। जिस घर में तुम्हारे

पिता जी तुम्हारी छमछम करती हुई बहू लाना चाहते थे उसमें अब तुम दुनिया से एक रूठा दिल लेकर जाओगे तो क्या उनकी आत्मा को शान्ति मिलेगी ?"

कमल एक टूटे हुए पेड़ की भांति घुटनों के बल गिर पड़ा और उमा देवी की टांगो से लिपट कर बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोने लगा।

स्टेशन पर गाड़ी आ गई।

उमा देवी ने उसका सिर ऊपर उठाया और उसके आँसू अपनी साड़ी के आंचल से पोंछे। कमल ने भर्राए हुए स्वर में पूछा—"कुसुम कहाँ है ?"

"कुसुम को मैं जेब में नहीं डाले फिरती। घर पर पड़ी सो रही होगी।"

यह सुन कमल जल्दी से उठकर स्टेशन की ओर भागा और जाते-जाते बोला—"मैं अभी सामान वापस लाता हूँ।"

कमल स्टेशन पहुँचा तो देखा कि प्रकाश ने सामान गाड़ी में रखवा दिया है। और स्वयं डिब्बे के दरवाजे पर खड़ा मुसकरा रहा है।

कमल दूर से चिल्लाया—"प्रकाश ! सामान उतार लो, मैं नहीं जाऊँगा।"

प्रकाश टस से मस नहीं हुआ।

इस पर कमल झल्लाकर उसके पास पहुँचा और इसके पहले कि वह कुछ कहे प्रकाश उसके आगे से हट गया और उसने देखा कि सामने सीट पर कुसुम बैठी है।

"अरे !" वह तुरन्त डिब्बे में घुस पड़ा।

प्रकाश बोला—"सामान कैसे उतर सकता है, अब तो कुसुम का सामान भी रखवा दिया। उधर गाड़ी भी चलने वाली है।"

कमल ने उसकी किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। वह झपटकर

आगे बढ़ा और सीट पर बैठ कर कुसुम का सिर अपनी छाती से लगा लिया।

इसी बीच में गाड़ी चल दी।

"अरे ! अब क्या होगा ?"

"होगा क्या ! जाओ दोनों सैर कर आओ बम्बई की। फिर आ जाना।"

एक दूसरे के कन्धे पर बांह रखकर कुसुम और कमल ने खिड़की से बाहर झाँककर देखा तो माता जी (उमा देवी) को अपने नमस्कार का उत्तर देते और हाथ से चले जाने का संकेत करते देखा।

उधर पूर्व में सुबह का सितारा झिल मिला रहा था और इधर कुसुम की काली आँखों के कोनों में खुशी के दो आँसू काँप रहे थे।

——समाप्त——

बलवन्त सिंह

बलवन्तसिंह का जन्म ज़िला गुजराँवाला (पंजाब) के एक गाँव में हुआ । प्रारम्भिक शिक्षा ग्रामीण पाठशाला में हुई । लड़कपन में ही बलवन्तसिंह पंजाब छोड़कर देहरादून आ गये जहां उनके पिता प्रिंस आफ़ वेल्स मिलिट्री कालेज के स्टाफ़ में थे । वहां बलवन्त सिंह ने केम्ब्रिज प्रीपेट्री स्कूल (ह्वाइट हाउस) और मिशन स्कूल में शिक्षा प्राप्त की । फिर अपने पिता के साथ इलाहाबाद आ गये और ईविंग क्रिश्चियन कालेज से एफ़० ए० और इलाहाबाद युनिवर्सिटी से बी० ए० किया । दूसरा महायुद्ध आरम्भ हो चुका था और भारत में कांग्रेस द्वारा स्वतंत्रता-आन्दोलन बड़े वेग से चल रहा था । बी० ए० करने के पश्चात बलवन्त सिंह के पिता ने उन्हें सैनिक अफसर बनाना चाहा किन्तु बेटे को बाप का यह प्रस्ताव पसन्द न आया । बलवन्त सिंह यद्यपि व्यवहारिक रूप से राजनीतिक क्षेत्र में नहीं आये परन्तु उनके हृदय में अंगरेज़ों के प्रति तीव्र घृणा थी और कांग्रेस की नीति को वे देश-हित के लिए सही समझते थे । यही कारण था कि उन्होंने सेना में भरती होने से इनकार कर दिया और अपने इस निर्णय का उन्हें बड़ा महँगा मूल्य चुकाना पड़ा ।

बलवन्त सिंह लाहौर चले गये । वहां उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० करना चाहा किन्तु कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं कि युनिवर्सिटी में प्रवेश न पा सके और दूसरे कारबार में लग जाना पड़ा । सन् १९४७ में बलवन्त सिंह को लाहौर से दिल्ली भागना पड़ा ।

दिल्ली में सौभाग्य से भारत सरकार में एक गज़ेटेड ऑफ़िसर का पद मिल गया। वहां तीन साल काम किया था कि सन् १६५० में इलाहाबाद में उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और बलवन्त सिंह को इलाहाबाद आ जाना पड़ा। तब से वे इलाहाबाद ही में रह रहे हैं।

वैसे बलवन्त सिंह पहले उर्दू में लिखते रहे लेकिन सन् १६४० से उन्होंने हिन्दी में भी लिखना शुरू किया। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ी जाती रहीं। कहानी उनका प्रिय विषय रहा है। वैसे उन्होंने नाटक भी लिखे हैं, रूपक भी लिखे हैं, हास्यात्मक तथा व्यंगात्मक लेख भी लिखते रहे हैं और कभी-कभी उनके आलोचनात्मक लेख भी निकलते रहे हैं। हिन्दी में पुस्तक रूप में उनकी सर्वप्रथम रचना सन् १६५० ई० में प्रकाशित हुई। यह उनका बड़ा उपन्यास 'रात, चोर और चाँद' था, जो दिल्ली से प्रकाशित हुआ। दूसरा लघु-उपन्यास धारा-वाहिक रूप में 'मनोहर कहानियाँ' में प्रकाशित हुआ और शीघ्र ही पुस्तक रूप में आनेवाला है। इसका नाम 'एक मामूली लड़की' है। और आपके हाथ में उनका यह तीसरा उपन्यास है। उनका चौथा वृहत् उपन्यास (लगभग ६०० पृष्ठ का) 'काले कोस' के नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होगा और शायद इससे भी पहले आप उनके दो लघु-उपन्यासों और छः कहानियों का एक संग्रह 'पंजाब की कहानियाँ' के नाम से पढ़ सकेंगे।

प्रेमचन्द की तरह बलवन्त सिंह भी उर्दू से हिन्दी में आए और इस दृष्टि से भी बलवन्त सिंह का नाम प्रेमचन्द के साथ लिया जा सकता है कि जिस प्रकार प्रेमचन्द ने अपनी कहानियाँ तथा उपन्यासों में यू० पी० के ग्रामीण-जीवन का चित्रण किया है उसी प्रकार बलवन्त सिंह ने पंजाब के ग्रामीण-जीवन को अपनी कहानियों और उपन्यासों में चित्रित किया है। यहाँ बलवन्त सिंह के पूरे साहित्य का विवेचन या विश्लेषण नहीं किया जा सकता क्योंकि बलवन्त सिंह ने किसी एक विषय पर नहीं

लिखा। यद्यपि उनको पंजाब के ग्रामीण-जीवन से विशेष प्रेम है परन्तु उन्होंने जीवन के किसी क्षेत्र या मानव-समाज के किसी वर्ग को अछूता नहीं छोड़ा। उन्होंने जब पंजाबी-जीवन पर कहानियाँ लिखनी शुरू कीं तो उर्दू के कुछ आलोचकों ने उन्हें पंजाबी जीवन का सर्वश्रेष्ठ चित्रकार कहा। बलवन्त सिंह को राय दी गई कि वे इसी विषय को अपना लें और उस पर लिखते चले जायँ किन्तु बलवन्त सिंह ने अपने को किसी सीमा में बाँधना पसन्द नहीं किया। वे बराबर लिखते रहे और जो घटना उन्हें प्रभावित करती रही, उसी पर लिखते गये। किसी 'वाद' के साथ भी बलवन्त सिंह ने अपने को नहीं बाँधा लेकिन अपने मन की बात कहने में बलवन्त सिंह कभी नहीं डरे। उन्होंने 'तीन बातें' नामक कहानी में फ़ौजी भर्ती का उस समय विरोध किया जब भारत-रक्षा कानून की तलवार प्रत्येक भारतीय के सिर पर लटकती रहती थी। 'तीन बातें' लिखने पर पंजाब-पुलिस ने ने उन्हें काफ़ी परेशान किया लेकिन अपनी कुछ दूसरी कहानियों में बलवन्त सिंह ने अंगरेज़ों के प्रति अपने मन की घृणा को उससे भी तीव्र स्वर में व्यक्त किया।

बलवन्त सिंह को कहानी-लेखन-कला पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इस बारे में समस्त आलोचक एकमत हैं और यह गौरव केवल बलवन्त सिंह को ही प्राप्त है कि लगातार तीन वर्ष तक (सन् १९४३ से १९४५) वही ऐसे लेखक थे जिनकी कहानियाँ वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती रहीं।

अब तक बलवन्त सिंह की हिन्दी उर्दू में एक दर्जन से अधिक पुस्तकें आ चुकी हैं। उनकी अनेक कहानियों का भारत की अन्य भाषाओं तथा अंग्रेज़ी में भी अनुवाद हुआ है।

बलवन्त सिंह से आप मिलें तो एक दो मुलाक़ातों में आपको यह पता ही न चलेगा कि उन्हें साहित्य से भी कुछ लगाव है। यदि आप न जानते हों कि बलवन्त सिंह लिखते भी हैं तो शायद जिन्दगी भर वे आप

को यह बात न बताएंगे। साहित्यिक विषयों पर विचार-विनिमय कीजि… तब भी बलवन्त सिंह कहीं पर अपनी बात नहीं करेंगे। 'मैंने ऐसा लि… है' यह वाक्य तो भूले से भी उनकी ज़बान पर न आयेगा। उनसे उन… किसी भी रचना की प्रशंसा कीजिए या बुराई, उन पर कोई प्रभाव न… पड़ेगा। लिखना वे अपना काम समझते हैं, उसको पसन्द करना या… करना, यह उनके विचार में पाठक या आलोचक का काम है। बल… सिंह को सब से अधिक पढ़ने का शौक़ है। देश-विभाजन से बलवन्त सि… को भी बड़ी हानि पहुँची। परन्तु अपनी जायदाद, अपना घर और अ… ज़मीन छूटने का बलवन्त सिंह को उतना दुख नहीं जितना दुख… अपनी उस लाइब्रेरी का है जो लाहौर में छूट गई और जिसमें उन्हों… बहुत सी अमूल्य और अलभ्य पुस्तकें जमा कर रखी थीं। लिखने… पढ़ने के अतिरिक्त बलवन्त सिंह को संगीत चित्रकारी और शिकार का शौक़ है।



Borrower's No.	Issue Date	Borrower's No.	Issue Date



